

KRi- III

K Ri-III

ओ३म् ।

ओ३म्

{ मूल्यम् ७॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



\* ओ३म् \*

# अथ पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

श्रीमद्भयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितः ॥

वेदमन्त्राणां संस्कृतप्राकृतभाषार्थसहितः ॥

सन्ध्योपासनाग्निहोत्रपितृसेवावलिवै-

श्वदेवातिथिपूजानित्यकर्मानुष्ठानाद्य

संशोध्य यन्त्रयितः ॥

अस्य ग्रन्थस्याधिकारः सर्वथा स्वाधीन एव रक्षितः ॥

अजमेरनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९७५ वि०

एकादशवारः १०००० }  
}

{ मूल्यम् ७॥





# छन्दः शिखरिणी ॥

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः

सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया ॥

इयं ख्यातिर्यस्य प्रकटसुगुणा वेदशरणा-

स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति

बोद्धव्यमनघाः ॥ १ ॥

## पञ्चमहायज्ञविधिस्थविषयसूची ॥

विषय	पृष्ठ से पृष्ठतक	विषय	पृष्ठ से पृष्ठतक.
आचमन	४—६	गुरुमंत्र	३२—३८
इन्द्रियस्पर्श	६—७	समर्पण	३८—४०
मार्ज्जन	७—८	सन्ध्याग्निहोत्रके प्र०	४०—४४
प्राणायाम	८—९	देवयज्ञ	४४—५२
अघमर्षण	९—१७	पितृयज्ञ	५२—६७
मनसापरिक्रमण	१७—२३	बलिवैश्वदेव	६७—७७
उपस्थान	२३—३२	अतिथिपूजा	७७—८०

# ॥ अथ सन्ध्याशब्दानामार्थनिर्देशः ॥

अभिष्टये	आनन्द के लिये	अनीकं	...	बल
अभि	...सब तरफ से	अग्नेः	...	प्रकाशक
अभीक्षात्	...सब तरफ से	अदीनाः	...	स्वाधीन
	प्रकाशित	आपः	...	व्यापक
अध्यजायत	... पैदा हुआ	आदित्य	...	सूर्यकिरण
अजायत	... पैदा हुआ	आप्रा	...	सब तरफ
अर्णवः	... जलवाला	से साधारण करनेवाला		
अधि	...	आत्मा	...	सर्वत्र व्यापक
अहो	... पीछे	इषवः	...	बाण
अकल्पयत्	... दिन	इन्द्रः	...	ऐश्वर्यवाला
अथो	... रचा	उदीची	...	उत्तर
अन्तरिक्ष	... पीछे	उत्तरं	...	पीछे
	बीच आकाश में	उत्तमं	...	अच्छा
अग्नि	रहने वाले लोग	उ	...	निश्चय
अधिपति	... प्रकाशस्वरूप	उद्	...	अच्छा
अस्तु	... स्वामी	उदगात्	...	अच्छा प्रकाशक
असितः	... हो	उच्चरत्	...	विज्ञानस्वरूप
अस्मान्	... निर्वन्धन	ऊर्द्ध्वा	...	ऊपर
अन्नम्	... हमको	ऋतं	...	वेद
अशनि	... पृथिव्यादि	एश्यो	...	इनके लिये
अगन्म	... विजली	ओम्	...	रक्षा करनेवाला
	... प्राप्त हों			



कण्ठः	...	गला	तत्	...	वह
कर	...	हाथ	तपः	...	ज्ञानरूप
कण्ठे	...	गले में	तपसः	...	सामर्थ्य से
कलमाष	...	चित्र	ततः	...	फिर
केतवः	...	किरण	तेभ्यो	...	उनके लिये
खम् आकाशकी तरह	...	व्यापक	तं	...	उसको
ग्रीवा	...	गरदन	तिरश्चि	...	कीड़े बिच्छू
चक्षुः	...	आंख		...	वगैरह
च	...	और	तमसः	...	अन्धकार से
चन्द्रमा	...	चांद	तल	...	तला
चित्रं	...	अद्भुत	देवीः	...	प्रकाशक
ज्योतिः	...	स्वप्रकाश	दिवं	...	अग्नि का
जीवेम	...	जीवें	दिग्	...	दिशा
जातवेदसं		जिससे वेद	द्वेष्टि		द्वेष करता है
		पैदा हुए	द्विष्मः	...	द्वेष करते हैं
जगतः	...	चर संसार का	दध्मः	...	धारण करें
जनः	...	पैदा करने वाला	दक्षिणा	...	दाहिनी
जम्भे	...	वश में	देवं	...	दिव्यरूप
त्वं	...	उसको	दृशे	...	देखने को
तस्युषः	...	स्थावर को	देवानां	...	विद्वानों के

देवत्रा	...अच्छे	गुणवाला	पादयोः	...	पैरों में
धावा	...	सूर्यलोक	पुनातु	...	पवित्र करै
देवस्य	...	प्रकाशक को	पुनः	...	फिर
धीमहि	...	ध्यान करते हैं	पूर्व	...	पहिले
धियः	...	बुद्धियों को	पृथिवी	...	ज़मीन
धाता	...	धारणकर्त्ता	प्राची	...	पूर्व
धुवा	...	नीचली	प्रतीची	...	पश्चिम
नो	...	हमको	पितरः	...	ज्ञानी लोग
नाभिः	...	टुंडी	पृदाकू	...	साँप
नेत्रयोः	...	नेत्रों को	पश्यन्तः	...	देखते हुए
नाभ्यां	...	नाभि में	परि	...	जुदा
नमः	...	नमना	बलम्	...	बल
नः	...	हम पर	ब्रह्म	...	सब से बड़ा
प्राणः	...	प्राणवासु	बाहुभ्यां	...	हाथों से
पुरस्तात्	...	सृष्टि से पहिले	वृहस्पतिः	...	बड़ों का स्वामी
पश्येम	...	देखें	भवन्तु	...	हो
प्रब्रवाम	...	उपदेश करें	भूः	...	प्राणदाता
प्रबोदयात्	...	प्रेरणा करै	भुवः	...	दुःखहर्त्ता
पीतये	...	पूर्यानन्द के लिये	भूयः	...	फिर
पृष्ठे	...	पीठ में	भर्गो	...	विज्ञानरूप
			मित्रस्य	...	मित्र के

मयोभवाय ...	सुखदाता के	वहन्ति ...	प्रकाश करते हैं
मयस्करायें ...	सुख करने	विष्णुः ...	व्यापक
	घाले के लिये	वीरुध ...	वृक्ष
महः ...	बड़ा	वर्ष ...	वर्षा
मिषतः ...	स्वभावसे	वयं ...	हम
यथा ...	जैसे	शं ...	कल्याण
यशः ...	कीर्ति	शंयोः ...	सुखकी
यः ...	जो	शिरः ...	सिर
यं ...	जिसको	श्रोत्रं ...	कान
रात्रि ...	रात	शिरसि ...	सिर में
रक्षिता	रक्षा करने वाला	श्वित्र ...	ज्ञानमय
राजी ...	पङ्क्ति	शुकम् ...	शुद्ध
वरुणस्य ...	श्रेष्ठकर्मकर्त्ता	शरदः ...	वर्षों के
वरेण्यं	ग्रहण के योग्य	शतम् ...	सौ
वाक् ...	वाणी	शङ्कराय च	कल्याण-
विदधत् ...	रचता हुआ		कर्त्ता के लिये
विश्वस्य ...	जगत् के	शृणुयाम ...	सुनें
वशी ...	वश में रखने	शतात् ...	सौसे
	वाला	शम्भवाय ...	सुखकारी के
वः ...	उनके		लिये
वरुणः ...	श्रेष्ठस्वामी		



शिवाय	...	सुखस्वरूप के लिये	सूर्य	...	सूरज
शिवतराय	...	अत्यन्तसुख- रूप के लिये	सोम	...	सब जगत् का प्रकाशक
स्ववन्त	...	वर्षा करै	स्वजः	...	जन्मरहित
स्वः	}	मध्यस्थलोक	सूर्य	...	व्यापक
सत्यं		सुखस्वरूप	स्याम	...	हों
सर्वत्र	...	अविनाशी	स्वाहा	...	प्यारा बचनबोलना
समुद्रात्	...	सब जगह	सवितुः	...	पैदा करनेवाले के
संवत्सर	...	समुद्र से	हितम्	...	भला चाहनेवाला
	...	साल वगैरह	हृदयम्	...	हिरदा
			हृदये	...	हिरदे में

इति ॥

## अथ सन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधिः ॥

---

यह पुस्तक नित्यकर्मविधि का है इसमें पञ्चमहायज्ञ का विधान है जिनके ये नाम हैं कि ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ । उन के मंत्र, मंत्रों के अर्थ और जो जो करने का विधान लिखा है सो सो यथावत् करना चाहिये । एकान्त देश में अपने आत्मा, मन और शरीर को शुद्ध और शान्त करके उस उस कर्म में चित्त लगा के तत्पर होना चाहिये, इन नित्यकर्मों के फल ये हैं कि ज्ञानप्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्यों की सिद्धि होना उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सिद्ध होते हैं । इन को प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है ॥

अथ तेषां प्रकारः । तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गतसन्ध्याविधानं प्रोच्यते ॥ तत्र सन्ध्याशब्दार्थः । सन्ध्यायन्ति सन्धायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या ॥ तत्र रात्रिन्दिवयोः सन्धिवेलायामुभयोस्सन्ध्ययोः सर्वैर्मनुष्यैरवश्यं परमेश्वरस्यैव स्तुतिप्रार्थनोपासनाः कार्याः ॥ आदौ शरीरशु-

द्धिः कर्त्तव्या ॥ सा बाह्या जलादिना । आभ्यन्तरारागद्वेषासत्यादित्यागेन ॥ अत्र प्रमाणम्—अङ्गिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ इत्याह मनुः अ० ५ । श्लो० १०६ ॥ शरीरशुद्धेस्सकाशादात्मान्तःकरणशुद्धिरवश्यं सर्वैस्सम्पादनीया । तस्यास्सर्वोत्कृष्टत्वात्परब्रह्मप्राप्त्येकसाधनत्वाच्च ॥ ततो मार्जनं कुर्यात् ॥ नैवेश्वरध्यानादावात्मस्य भवेदेतदर्थं शिरोनेत्राद्युपरिजलप्रक्षेपणं कर्त्तव्यम् । नोचेन्न ॥

अथ सन्ध्यापासनादि पांच महायज्ञों की विधि लिखी जाती है और उसमें के मन्त्रों का अर्थ भी लिखा जाता है ॥ पहिले संध्या शब्द का अर्थ यह है कि ( संध्यायन्ति ) भलीभांति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाय परमेश्वर का जिसमें वह संध्या, सो रात और दिन के संयोग समय दोनों संध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये । पहिले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि और राग द्वेष आदि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिये क्योंकि मनुजी ने ५ अध्याय के १०६ श्लोक ( अङ्गिर्गात्राणि इत्यादि ) में यह लिखा है कि शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और



तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है, परन्तु शरीरशुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि सब को अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वरप्राप्ति का एक साधन है तब कुशा वा हाथ से मार्जन करे अर्थात् परमेश्वर का ध्यान आदि करने के समय किसी प्रकार का आलस्य न आवे इसलिये शिर और नेत्र आदि पर जल प्रक्षेप करे, यदि आलस्य न हो तो न करना ॥

पुनन्यूनान्न्यूनान्छीन् प्राणायामान् कुर्यात् ॥

आभ्यन्तरस्थं वायुं नासिकापुटाभ्यां बलेन बहिर्निस्सार्य यथाशक्ति बहिरेव स्तम्भयेत् पुनः शनैश्शनैर्गृहीत्वा किञ्चित्तमवरुध्य पुनस्तथैव बहिर्निस्सारयेदवरोधयेच्चैवं त्रिवारं न्यूनान्तिन्यूनं कुर्यादनेनात्ममनसोः स्थितिं सम्पादयेत् ॥ ततो गायत्रीमन्त्रेण शिखां बद्ध्वा रक्षाञ्च कुर्यात् ॥ इतस्ततः केशा न पतेयुरेतदर्थं शिखाबन्धनम् ॥ प्रार्थितस्सर्गेश्वरस्सत्कर्मसु सर्वत्र सर्वदा रक्षेत् ॥ एतदर्थं रक्षाकरणम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

फिर कम से कम तीन प्राणायाम करे अर्थात् भीतर के वायु

को बल से निकाल कर यथाशक्ति बाहर ही रोक दे फिर शनैः २ प्रहरण करके कुछ चिर भीतर ही रोकके बाहर निकाल दे और वहाँ भी कुछ रोके इस प्रकार कम से कम तीन बार करे । इससे आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करे इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बांध के रक्षा करे इसका प्रयोजन यह है कि इधर उधर केश न गिरें सो यदि केशादि पतन न हो तो न करे और रक्षा करने का प्रयोजन यह है कि परमेश्वर प्रार्थित होकर सब भले कामों में सदा सब जगह में हमारी रक्षा करें ॥

॥ अथाचमनमन्त्रः ॥

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु  
पीतये । शंयोगभिस्तवन्तु नः ॥ यजु० अ० ३६ ।  
मं० १२ ॥

॥ भाष्यम् ॥

आप्तु व्याप्तौ, अस्माद्धातोरप्शब्दः सिध्यति । दिवु क्रीडाद्यर्थः । अप्शब्दो नियतस्त्रीलिंगो बहुवचनान्तश्च ( शन्नोदे० ) देव्य आपः सर्वप्रकाशकस्सर्वानन्दप्रदस्सर्वव्यापक ईश्वरः ( अभिष्टये इष्टानन्दप्राप्तये ( पीतये ) पूर्णानन्द-



भोगेन तृप्तये ( नः ) अस्मभ्यं ( शं ) कल्याणं ( भवन्तु )  
अर्थात् भावयतु प्रयच्छतु । ता आपो देव्यः स एवेश्वरः  
( नः ) अस्मभ्यं ( शंयोः ) शम् अभिस्रवन्तु अर्थात् सु-  
खस्याभितः सर्वतो वृष्टिं करोतु । अप्शब्देनेश्वरस्य ग्रह-  
णमत्र प्रमाणम् ॥

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्मजनां विदुः । असंच  
यत्र सचान्तस्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवेदेवसः ॥  
अथ०कां०१०॥अनु०४।व०२२।मं०१०॥अनेन वेदमन्त्रप्रमा-  
णेनाप्शब्देन परमात्मनोत्रग्रहणं कियते ॥ एवमनेन मन्त्रे-  
श्वरं प्रार्थयित्वा त्रिराचामेत् ॥ जलाभावश्चेन्नैव कुट्यात् ।  
आचमनमप्यालस्यस्य कण्ठस्थकफस्य निवारणार्थम् ॥

॥ आषार्थ ॥

अब आचमन करने का मन्त्र लिखते हैं ( ओं शन्नोदेवी  
इत्यादि ) इस का अर्थ यह है कि आप्लू व्याप्तौ, इस धातु से  
अप् शब्द सिद्ध होता है वह सदा स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनान्त  
है । दिवु धातु अर्थात् जिसके क्रीड़ा आदि अर्थ हैं उससे देवी  
शब्द सिद्ध होता है ( देव्य आपः ) सब का प्रकाशक सब को  
आनन्द देनेवाला और सर्वव्यापक ईश्वर ( अभिष्टये ) मनो-  
वाञ्छित आनन्द के लिये और ( पीतये ) पूर्णानन्द की प्राप्ति



( ६ )

पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

के लिये ( नः ) हमको ( शं ) कल्याणकारी ( भवन्तु ) हो  
अर्थात् हमारा कल्याण करे ( ताः आपो देव्यः ) वही परमेश्वर  
( नः ) हम पर ( शंयोः ) सुख की ( अभिस्रवन्तु ) सर्वथा वृष्टि  
करे । इस प्रकार इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके तीन  
आचमन करे यदि जल न हो तो न करे । आचमन से गले के  
कफादि की निवृत्ति होना प्रयोजन है । यहां अप् शब्द से ईश्वर के  
ग्रहण करने में प्रमाण-( यत्र लोकांश्च ) जिसमें सब लोक  
लोकान्तर ( कोश ) अर्थात् सब जगत् का कारणरूप स्रजाना  
जिसमें असत् अदृश्यरूप आकाशादि और सत् स्थूल प्रकृ-  
त्यादि सब पदार्थ स्थित हैं उसी का नाम अप् है और वह नाम  
ब्रह्म का है तथा उसी को स्कंभ कहते हैं वह कौनसा देव और  
कहां है इसका यह उत्तर है कि ( अन्तः ) सब के भीतर व्या-  
पक हो के परिपूर्ण हो रहा है उसी को तुम उपास्य, पूज्य और  
इष्टदेव जानो, इस वेदमन्त्र के प्रमाण से अप् नाम ब्रह्म का है ॥

॥ अथेन्द्रियस्पर्शः ॥

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः ।  
ओं चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम् ।

ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः ।  
ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोवलयम् ।  
ओं करतलकरपृष्ठे ॥

॥ भाष्यम् ॥

एभिः सर्वत्रेश्वरप्रार्थनया स्पर्शः कार्यः । सर्वदेश्वर-  
कृपयेन्द्रियाणि वलवन्ति तिष्ठन्तिवत्यभिप्रायः ॥

॥ अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमाज्जनमन्त्राः ॥

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः  
पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे ।  
ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु  
नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः ।  
ओं सत्यं पुनातु पुनश्चिरसि । ओं खं  
ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

॥ भाष्यम् ॥

ओमित्यस्य भूर्भुवः स्वरित्येतासां चार्था गायत्रीम-  
न्त्रार्थे द्रष्टव्याः । महरथात् सर्वेभ्यो महान् सर्वैः पूज्यश्च ।



( ८ )

पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

सर्वेषां जनकत्वाज्जनः परमेश्वरः । दुष्टानां संतापकारक-  
त्वात्स्वयं ज्ञानस्वरूपत्वात् ( यस्य ज्ञानमयं तपः ) इति वच-  
नस्य प्रामाण्यात् तप ईश्वरः । यदविनाशि यस्य कदाचि-  
द्विनाशो न भवेत् तत्सत्यं ब्रह्मव्यापकमिति बोध्यम् ।  
इतीश्वरनामभिर्मार्जनं कुर्यात् ॥

॥ अथ प्राणायाममन्त्राः ॥

॥ सू० ॥

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं  
महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ।  
तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० ७१ । इति प्रा-  
णायाममन्त्राः ॥

॥ भाष्यम् ॥

एतेषामुच्चारणार्थविचारपुरस्सरं पूर्वोक्तप्रकारेण प्रा-  
णायामान् कुर्यात् ॥

॥ भाषार्थः ॥

अथेन्द्रियस्पर्शः ( ओं वाक् वागित्यादि ) इस प्रकार से  
ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक इन्द्रियों का स्पर्श करे । इसका अभि-  
प्राय यह है कि ईश्वर की प्रार्थना से सब इन्द्रिय बलवान्



रहें । अब ईश्वर की प्रार्थना पूर्वक माज्जन के मन्त्र लिखे जाते हैं ( ओं भूः पुनातु शिरसीत्यादि ) ओंकार भूः भुवः और स्वः इनके अर्थ गायत्री मंत्र के अर्थ में देखलेना ( महः ) सब से बड़ा और सब का पूज्य होने से परमेश्वर को मह कहते हैं ( जनः ) सब जगत् के उत्पादक होने से परमेश्वर का जन नाम है ( तपः ) दुष्टों को संतापकारी और ज्ञानस्वरूप होने से ईश्वर को तप कहते हैं, क्योंकि ( यस्येत्यादि ) उपनिषद् का वाक्य इस में प्रमाण है, ( सत्यं ) अविनाशी होने से परमेश्वर का सत्य नाम है और व्यापक होने से 'ब्रह्म' नाम परमेश्वर का है । अर्थात् पूर्व मंत्रोक्त सब नाम परमेश्वर ही के हैं इस प्रकार ईश्वर के नामों के अर्थों का स्मरण करते हुए माज्जन करें । अब प्राणायाम के मंत्र लिखते हैं ( ओं भूरि-  
त्यादि ) इनके उच्चारण और अर्थ विचारपूर्वक उस प्रकार के अनुसार प्राणायामों को करे ॥

अथेश्वरस्य जगदुत्पादनद्वारा स्तुत्याऽघमर्षणमन्त्रा  
अर्थात् पापदूरीकरणार्थाः ॥

॥ सू० ॥

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीह्रात्तप-

( १० )

पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

सोध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः  
समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि-  
संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि वि-  
दधद्विष्वस्य मिषतोवशी ॥ २ ॥ सूर्या-  
चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।  
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥  
ऋ० अ० ८ । अ० ८ । व० ४८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

( धाता ) दधाति सकलं जगत् पोषयति वा स धाते-  
श्वरः ( वशी ) वशं कर्तुं शीलमस्य सः ( यथापूर्वम् ) यथा  
तस्य सर्वज्ञे विज्ञाने जगद्रचनज्ञानमासीत् पूर्वकल्पमष्टौ यथा  
रचनं कृतमासीत्तथैव जीवानां पुण्यपापानुसारतः प्राणिदेहा-  
नकल्पयत् ( सूर्याचन्द्रमसौ ) यौ प्रत्यक्षविषयौ सूर्यचन्द्र-  
लोकौ ( दिवम् ) सर्वोत्तमं स्वप्रकाशमग्न्याख्यम् ( पृथिवीं )  
प्रत्यक्षविषयां ( अन्तरिक्षम् ) अर्थाद्द्वयोर्लोकयोर्मध्यमा-  
काशं तत्रस्थान्त्रिलोकांश्च ( स्वः ) मध्यस्थं लोकम् ( अक-



ल्पयत् ) यथापूर्वं रचितवान् । ईश्वरज्ञानस्यापरिणामित्वात्  
 पूर्णत्वादनन्तत्सर्वदैकरसत्वाच्च नैव तस्य वृद्धिक्तयव्य-  
 भिचाराश्च कदाचिद् भवन्ति । अतएव यथा पूर्वमकल्पय-  
 दित्युक्तम् स एव तृतीयेश्वरः ( विश्वस्य मिषतः ) सहजस्व-  
 भावेन ( अहोरात्राणि ) रात्रेर्दिवसस्य च विभागं यथापूर्वं  
 ( विदधत् ) विधानं कृतवान् तस्य धातुर्वशिनः परमेश्वरस्यैव  
 ( अभीद्धात् ) अभितः सर्वत इद्धात् दीप्तात् ज्ञानमयात् ( तप-  
 सः ) अर्थादनन्तसामर्थ्यात् ( ऋतं ) यथार्थं सर्वविधाधि-  
 करणं वेदशास्त्रं सत्यं त्रिगुणमयं प्रकृत्यात्मकमव्यक्तं स्थू-  
 लस्य सूक्ष्मस्य जगतः कारणं चाध्यजायत यथापूर्वमुत्पन्नम्  
 ( ततो रात्री ) या तस्मादेव सामर्थ्यात्प्रलयानन्तरं भवति  
 सा रात्रिरजायत यथा पूर्वमुत्पन्नासीत् ॥ तम आसीत्ति-  
 मसा गूढमग्रे ॥ ऋ० अ० ८ । अ० ७ । च० १७ । सं० ३ ॥  
 अग्रे सृष्टेः प्राक्तमोन्धकार एवासीत् तेन तमसा सकलं  
 जगदिदमुत्पत्तेः प्राग्गूढं गुप्तमर्थाददृश्यमासीत् । ( ततः समु० )  
 तस्मादेव सामर्थ्यात्पृथिवीस्थोन्तरिक्षस्थश्च महान् ( समुद्रः )  
 अजायत यथापूर्वमुत्पन्न आसीत् ( समुद्रादुत्पत्त्यात् ) पश्चात्  
 संवत्सरः क्षणादिलक्षणः कालोध्यजायत । यावज्जगत्ता-



वत्सर्वं परमेश्वरस्य सामर्थ्यादेवोत्पन्नमित्यवधार्यम् । ए-  
वमुक्तगुणं परमेश्वरं संस्मृत्य पापाद्भीत्वा ततो दूरे सर्वै-  
र्जनैः स्थातव्यम् । नैव कदाचित्केनचित्स्वलपमपि पापं  
कर्त्तव्यमितीश्वराज्ञास्तीति निश्चेतव्यम् । अनेनाद्यमर्षणं  
कुर्यादर्यात्पापानुष्ठानं सर्वथा परित्यजेत् ॥

### ॥ भाषार्थ ॥

अब अद्यमर्षण अर्थात् हे ईश्वर ! तू जगदुत्पादक है इ-  
त्यादि स्तुति करके पाप से दूर रहने के उपदेश का मंत्र लिखते  
हैं । ( ओं ऋतञ्च सत्यमित्यादि ) इसका अर्थ यह है कि  
( धाता ) सब जगत् का धारण और पोषण करने वाला और  
( वशी ) सब का वश करने वाला परमेश्वर ( यथापूर्वम् )  
जैसा कि उस के सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान  
था और जिस प्रकार पूर्वकल्प की सृष्टि में जगत् की रचना  
थी और जैसे जीवों के पुण्य पाप थे उनके अनुसार से ईश्वर  
ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं ( सूर्याचन्द्रमसौ ) जैसे  
पूर्व कल्प में सूर्य चन्द्र लोक रचे थे वैसे ही इस कल्प में भी  
रचे हैं ( दिव्यं ) जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा

था वैसा ही इस कल्प में भी रचा है तथा ( पृथिवी ) जैसी प्रत्यक्ष दीखती है ( अन्तरिक्षं ) जैसा पृथिवी और सूर्यलोक के बीच में पोलापन है ( स्वः ) जितने आकाश के बीच में लोक हैं उनको ( अकल्पयत् ) ईश्वर ने रचा है जैसे अनादि-काल से लोक लोकान्तर को जगदीश्वर बनाया करता है वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी बनावेगा क्योंकि ईश्वर का ज्ञान विपरीत कभी नहीं होता, किन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एकरस ही रहता है। उस में वृद्धि, क्षय और उलटापन कभी नहीं होता इसी कारण से ( यथापूर्वमकल्पयत् ) इस पद का ग्रहण किया है ( विश्वस्य म्रियतः ) उसी ईश्वर ने सहजस्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस, घटिका, पल और क्षण आदि को जैसे पूर्व थे वैसे ही ( व्यदधत् ) रचे हैं इसमें कोई ऐसी शंका करे कि ईश्वर ने किस वस्तु से जगत् को रचा है उसका उत्तर यह है कि ( अभीद्धात्तपसः ) ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। जो कि ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण प्रकाशित और सब जगत् के बनाने की सामग्री ईश्वर के आधीन है ( ऋतं ) उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्या का खजाना वेदशास्त्र



को प्रकाशित किया जैसा कि पूर्व सृष्टि में प्रकाशित था और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा ( सत्यं ) जो त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्त्व रजो और तमोगुण से युक्त है जिसके नाम अव्यक्त अव्याकृत सत् प्रधान प्रकृति है जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है सो भी ( अव्यजायत ) अर्थात् कार्यरूप होके पूर्व कल्प के समान उत्पन्न हुआ है ( ततो राज्यजायत ) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है इस में ऋग्वेद का प्रमाण है कि जब जब विद्यमान सृष्टि होती है उसके पूर्व सब आकाश अन्धकाररूप रहता है और उसी अन्धकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं उसी का नाम महारात्रि है ( ततः समुद्रोऽर्णवः ) तदनन्तर उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघमण्डल में जो महासमुद्र है सो भी पूर्व सृष्टि के सदृश ही उत्पन्न हुआ है ( समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ) उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात् क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है वेद से लेके पृथिवी पर्यन्त जो यह जगत् है सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है और ईश्वर सब को उत्पन्न करके सब में व्यापक होके अन्तर्यामीरूप से सब



के पाप पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात छोड़ के सत्य न्याय से सब को यथावत् फल दे रहा है ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित है कि मन कर्म और वचन से पापकर्मों को कभी न करें । इसी का नाम अवमर्षण है अर्थात् ईश्वर सब के अन्तःकरण के कर्मों को देख रहा है इस से पाप-कर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ दें ॥

शान्मोदेवीरिति पुनराचामेत् । ततो गायत्र्यादि मन्त्र-  
थान् मनसा विचारयेत् । पुनः परमेश्वरेणैव सूर्यादिकं  
सकलं जगद्रचितमिति परमार्थस्वरूपं ब्रह्म चिन्तयित्वा  
परं ब्रह्म प्रार्थयेत् ॥

( शान्मोदेवीरिति ) इस मन्त्र से तीन आचमन करे । तद-  
नन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की  
स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर  
पश्चात् प्रार्थना करे अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का स-  
हाय चाहें और सदा पश्चात्ताप करें कि मनुष्यशरीर धारण  
करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं बनता ।  
जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके सब जगत्

का उपकार किया है वैसे हम लोग भी सब का उपकार करें, इस काम में परमेश्वर हम को सहाय करे कि जिससे हम लोग सब को सदा सुख देते रहें तदनन्तर ईश्वर की उपासना करें, सो दो प्रकार की है एक सगुण और दूसरी निर्गुण जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, चेतन, व्यापक अन्तर्यामी, सब का उत्पादक, धारण करनेहारा मङ्गलमय शुद्ध, सनातन, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थों का देनेवाला, सब का पिता, माता, बन्धु, मित्र, राजा और न्यायाधीश है इत्यादि ईश्वर के गुण विचारपूर्वक उपासना करने का नाम सगुणोपासना है तथा निर्गुणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिये कि ईश्वर अनादि अनन्त है जिसका आदि और अन्त नहीं, अजन्मा अमृत्यु जिसका जन्म और मरण नहीं, निराकार, निर्विकार, जिसका आकार और जिसमें कोई विकार नहीं जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, अन्याय, अधर्म, रोग, दोष, अज्ञान और मलीनता नहीं है जिसका परिमाण, क्रोधन बंधन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण और कम्पन नहीं होता, जो ह्रस्व, दीर्घ और शोकातुर कभी नहीं होता जिसको भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष और शोक कभी



नहीं होते । जो उलटा काम कभी नहीं करता इत्यादि जो जगत् के गुणों से ईश्वर को अलग जान के ध्यान करना वह निर्गुणोपासना कहाती है । इस प्रकार प्राणायाम करके अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका के द्वारा बाहर फेंक के यथाशक्ति बाहर ही रोक के पुनः धीरे धीरे भीतर लेके पुनः बल से बाहर फेंक के रोकने से मन और आत्मा को स्थिर करके आत्मा के बीच में जो अन्तर्यामीरूप से ज्ञान और आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर है उसमें अपने आप को मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये जैसा गोताखोर जल में डुबकी मारके शुद्ध होके बाहर आता है वैसे ही सब जीव लोग अपने आत्माओं को शुद्ध ज्ञान आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें ॥

॥ अथ मनसा परिक्रमामन्त्राः ॥

प्राची दिग्ग्निरधिपतिरसितो रक्षिता-  
दित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो  
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।



योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो  
 जम्भे दधमः ॥ १ ॥ दक्षिणादिगिन्द्रोऽधि-  
 पतिस्तिरश्चराजीरक्षिता पितर इषवः ।  
 तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम  
 इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि  
 यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दधमः ॥ २ ॥ प्र-  
 तीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षितान्नमि-  
 षवः तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो  
 नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्  
 द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दधमः ॥ ३ ॥  
 उदीचीदिक् सोमोऽधिपतिः स्वजोरक्षिताश-  
 निरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो र-  
 क्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।  
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे

दधमः ॥ ४ ॥ ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्मा-  
षघ्नीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽ-  
धिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो  
नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं  
द्विष्मस्तं वो जम्भे दधमः ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वा  
दिग् बृहस्पतिरधिपतिः शिवत्रोरक्षिता वर्ष-  
मिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षि-  
तृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।  
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे  
दधमः ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ३ । अ० ६ ।  
व० २७ । मं० १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ ॥

॥ आष्यम् ॥

( प्राची दि० ) सर्वासु दिक्षु व्यापकमीश्वरं संध्या-  
यामग्न्यादीभिर्नामभिः प्रार्थयेत् । यत्र स्वस्य मुखं सा



प्राची दिक् । तथा यस्यां सूर्य उदेति सापि प्राची दिगस्ति ।  
 तस्या अधिपतिरग्निरर्थात् ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः ( आसितः )  
 बन्धनरहितोऽस्माकं सदा रक्षिता भवतु । यस्यादित्याः  
 प्राणाः किरणाश्चेषवस्तैः सर्वे जगद्रक्षति तेभ्य इन्द्रिया-  
 धिपतिभ्यश्शरीररक्षितृभ्य इष्टरूपेभ्यः प्राणेभ्यो वारंवारं  
 नमोस्तु । कस्मै प्रयोजनाय यः कश्चिदस्मान् द्वेष्टि यं च  
 वयं द्विष्मस्तं वः तेषां प्राणानां जम्भे अर्थद्वशे दध्मः ।  
 यतस्सोनर्थाच्चित्यं स्वमित्रो भवेत् वयं च तस्य मित्राणि  
 भवेय ॥ १ ॥ ( दक्षिणा० ) दक्षिणस्या दिश इन्द्रः पर-  
 मेश्वर्ययुक्तः परमेश्वरोधिपतिरस्ति स एव कृपयास्मान्  
 रक्षिता भवतु । अग्रे पूर्ववदन्वयः कर्त्तव्यः ॥ २ ॥ तथा  
 ( प्रतीची दिग्० ) अस्या वरुणः सर्वोत्तमोधिपतिः परमे-  
 श्वरोऽस्माकं रक्षिता भवेदिति पूर्ववत् ॥ ३ ॥ ( उदीची० )  
 सोमः सर्वजगदुत्पादकोऽधिपतिरीश्वरोऽस्माकं रक्षिता स्या-  
 दिति ॥ ४ ॥ ( ध्रुवादिक्० ) अर्थादधोदिक् अस्या विष्णुर्व्या-  
 पक ईश्वरोधिपतिः सोस्यामस्मान् रक्षेत्० अन्यत्पूर्ववत् ॥ ५ ॥  
 ( ऊर्ध्वादिक्० ) अस्या बृहस्पतिरर्थाद्बृहत्यावाचो बृहतो-



वेदशास्त्रस्य बृहतामाकाशादीनां च पतिर्बृहस्पतिर्यः सर्वज-  
गतोधिपतिः स सर्वतोस्मान् रक्षेत् । अग्रे पूर्ववद्योजनीयम् ॥  
सर्वे मनुष्याः सर्वशक्तिमन्तं सर्वगुरुं न्यायकारिणं दयालुं  
पितृवत्पालकं सर्वासु दिक्षु सर्वत्र रक्षकं परमेश्वरमेव मन्ये-  
रन्नित्यभिप्रायः ॥

॥ भाषार्थः ॥

( प्राचीदिग्ग्निरधिपतिः ) जो प्राची दिक् अर्थात् जिस ओर अपना मुख हो उस ओर अग्नि जो ज्ञानस्वरूप अधिपति जो सब जगत् का स्वामी ( असितः ) बन्धन रहित ( रक्षिता ) सब प्रकार से रक्षा करने वाला ( आदित्या इषवः ) जिस के बाण आदित्य की किरण हैं । उन सब गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग बारम्बार नमस्कार करते हैं ( रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ) जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं इनको हमारा नमस्कार हो इसलिये कि जो प्राणी अज्ञान से हमारा द्वेष करता है और जिस अज्ञान से धार्मिक पुरुष का तथा पापी पुरुष का हम लोग द्वेष करते हैं । उन सब की बुराई को उन बाणरूप किरण मुखः

रूप के बीच में दग्ध कर देते हैं कि जिससे किसी से हम लोग  
 वैर न करें और कोई भी प्राणी हम से वैर न करे, किन्तु हम  
 सब लोग परस्पर मित्रभाव से वृत्तं ॥ १ ॥ ( दक्षिणादिगिन्द्रो-  
 धिपतिः ) जो हमारे दाहिनी ओर दक्षिण दिशा है उसका  
 अधिपति इन्द्र अर्थात् जो पूर्ण पेशवर्य वाला है । ( तिरश्चिरा-  
 जोरक्षिता ) जो पदार्थ कीट पतंग वृश्चिक आदि तिर्यक्  
 कहाते हैं उनकी राजी जो पंक्ति है उनसे रक्षा करने वाला एक  
 परमेश्वर है । ( पितर इषवः ) जिसकी सृष्टि में ज्ञानी लोग  
 बाण के समान हैं ( तेभ्यो नमो० ) आगे का अर्थ पूर्व के  
 समान जान लेना ॥ २ ॥ ( प्रतोचीदिग् वरुणोधिपतिः ) जो  
 पश्चिम दिशा अर्थात् अपने पृष्ठ भाग में है उसमें वरुण जो  
 सब से उत्तम सब का राजा परमेश्वर है ( पृदाकूरक्षितान्मि-  
 षवः ) जो बड़े बड़े अजगर सर्पादि विषधारी प्राणियों से रक्षा  
 करने वाला है जिसके अन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ बाणों के  
 समान हैं श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं  
 ( तेभ्यो नमो० ) इसका अर्थ पूर्व मन्त्र के समान जान लेना ॥ ३ ॥  
 ( उदीचीदिक् सोमोधिपतिः ) जो अपनी बाई ओर उत्तर दिशा  
 है उसमें सोम नाम से अर्थात् शान्त्यादि गुणों से आनन्द करने



वाले जगदीश्वर का ध्यान करना चाहिये ( स्वजोरक्षिता शनि-  
रिषवः ) जो अच्छी प्रकार अजन्मा और रक्षा करने वाला है  
जिसके बाण विद्युत् हैं ( तेभ्यो नमो० ) आगे पूर्ववत् जान  
लेना ॥ ४ ॥ ( ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः ) ध्रुवदिशा अर्थात् जो  
अपने नीचे की ओर है उसमें विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से  
परमात्मा का ध्यान करना ( कल्माषघ्नीवो रक्षिता वीरुध इषवः )  
जिसके हरित रंग वाले वृक्षादि ग्रीवा के समान हैं जिसके  
बाण के समान सब वृक्ष हैं उनसे अधोदिशा में हमारी रक्षा  
करे ( तेभ्यो नमो० ) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥ ५ ॥ ( उद्धर्वा-  
दिग्वृहस्पतिरधिपतिः ) जो अपने ऊपर दिशा है उसमें बृह-  
स्पति जो कि बाणी का स्वामी परमेश्वर है उसको अपना  
रक्षक जानें जिस के बाण के समान वर्षा के बिन्दु हैं उनसे  
हमारी रक्षा करे ( तेभ्यो० ) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥ ६ ॥

इति मनसा परिक्रमामन्त्राः ॥

॥ अथोपस्थानमन्त्राः ॥

ओं उद्दयन्तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्त-  
रम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्ज्योतिरुत्त-  
मम् ॥ १ ॥ य० अ० ३५ । मं० १४ ॥



॥ भाष्यम् ॥

हे परमात्मन् ! (सूर्य) चराचरात्मानं त्वां (पश्यन्तः) प्रेक्षमाणास्सन्तो वयम् (उदगन्म) अर्थात् उत्कृष्टश्रद्धावन्तो भूत्वा वयं भवन्तं प्राप्नुयाम कथंभूतं त्वां ( ज्योतिः ) स्व-प्रकाशं ( उत्तमम् ) सर्वोत्कृष्टम् (देवत्रा) सर्वेषु दिव्यगुण-वत्सु पदार्थेषु ह्यनन्तादिव्यगुणैर्युक्तं ( देवं ) धर्मात्मनां मुमुक्षूणां युक्तानां च सर्वानन्दस्य दातारं मोदयितारं च ( उत्तरं ) जगत्प्रलयानन्तरं नित्यस्वरूपत्वाद्विराजमानम् ( स्वः ) सर्वानन्दस्वरूपं ( तमसस्परि ) अज्ञानान्धकारा-त्पृथग्भूतं भवन्तं प्राप्तुं वयं नित्यं प्रार्थयामहे । भवान् स्वकृपया सद्यः प्राप्नोतु न इति ॥ १ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब उपस्थान के मन्त्रों का अर्थ करते हैं जिनसे परमे-श्वर की स्तुति और प्रार्थना की जाती है, हे परमेश्वर ! ( त-मसस्परिस्वः ) सब अन्धकार से अलग प्रकाशस्वरूप ( उत्तरं ) प्रलय के पीछे सदा वर्त्तमान ( देवं देवत्रा ) देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करनेवालों में प्रकाशक ( सूर्य ) चराचर के आत्मा ( ज्योतिरुत्तमं ) जो ज्ञानस्वरूप और सब से उत्तम

आप को जान के ( वयमुदगन्म ) हम लोग सत्य से प्राप्त हुए हैं हमारी रक्षा करनी आपके हाथ है क्योंकि हम लोग आप के शरण हैं ॥ १ ॥

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।  
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥ यजु० अ० ३३ ।  
मं० ३१ ॥

॥ भाष्यम् ॥

( केतवः ) किरणा विविधजगतः पृथक् पृथग्रचना-  
दिनियामका ज्ञापकाः प्रकाशका ईश्वरस्य गुणाः ( दृशे-  
विश्वाय ) विश्वं द्रष्टुं ( त्यं ) तं पूर्वोक्तं ( देवं ) ( सूर्यम् )  
चराचरात्मानं परमेश्वरं ( उद्वहन्ति ) उत्कृष्टतया प्रापयन्ति  
ज्ञापयन्ति प्रकाशयन्ति वै । ( च ) इति वितर्के नैव पृथक्  
पृथग् विविधनियमान् दृष्ट्वा नास्तिका अपीश्वरं त्यक्तुं  
समर्था भवन्तीत्याभिप्रायः । कथंभूतं देवं ( जातवेदसं ) जाता  
ऋग्वेदादयश्चत्वारो वेदाः सर्वज्ञानप्रदाः यस्मात्तथा जातानि  
प्रकृत्यादीनि भूतान्यसंख्यातानि विन्दति । यद्वा जातं  
सकलं जगद्वेत्ति जानाति यः स जातवेदास्तं जातवेदसं



सर्वे मनुष्यास्तमेवैकं प्राप्तुमुपासितुमिच्छन्ति त्वत्प्रियायः ॥ २ ॥

॥ भाषार्थ ॥

( उदुत्यं जातवेदसं० ) जिससे ऋग्वेदादि चारवेद प्रसिद्ध हुए हैं और जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है । जो सब जगत् का उत्पादक है सो परमेश्वर जातवेदा नाम से प्रसिद्ध है ( देवं ) जो सब देवों का देव और ( सूर्य्य ) सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है ( त्यं ) उस परमात्मा को ( दृष्टे विश्वाय० ) विश्वविद्या की प्राप्ति के लिये हम लोग उपासना करते हैं ( उद्धहन्ति केतवः ) जिस को केतवः अर्थात् वेद की श्रुति और जगत् के पृथक् रचनादि नियामक गुण उसी परमेश्वर को जानते और प्राप्त करते हैं उस विश्व के आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर ही की हम उपासना सदा करें अन्य किसी की नहीं ॥ २ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य  
वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्ष-  
ॐ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा  
॥ ३ ॥ य० अ० ७ । मं० ४२ ॥



॥ भाष्यम् ॥

( चित्रं० ) स एव देवः ( सूर्यः ) ( जगतः ) जङ्ग-  
मस्य ( तस्थुषः ) स्थावरस्य च ( आत्मा ) अतति नैरन्तर्येण  
सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा तथा ( आप्रा० ) द्यौः पृथिवी  
अन्तरिक्षं चैतदादिसर्वं जगद्रचयित्वा आसमन्ताद्धारयन्सन्  
रक्षति । ( चक्षुः ) एष एवैतेषां प्रकाशकत्वाद्वाह्याभ्यन्तर-  
योश्चक्षुः प्रकाशको विज्ञानमयो विज्ञापकश्चास्ति । अतएव  
( मित्रस्य ) सर्वेषु द्रोहरहितस्य मनुष्यस्य सूर्यलोकस्य  
प्राणस्य वा ( वरुणस्य ) वरेषु श्रेष्ठेषु कर्मसु गुणेषु वर्त्त-  
मानस्य च ( अग्नेः ) शिल्पविद्याहेतो रूपगुणदाहप्रकाशक-  
स्य विद्युतोभ्राजमानस्यापि चक्षुः सर्वसत्योपदेष्टा प्रका-  
शकश्च ( देवानाम् ) स दिव्यगुणवतां विदुषामेव हृदये  
( उद्गात् ) उत्कृष्टतया प्राप्तोस्ति प्रकाशको वा तदेव ब्रह्म  
( चित्रं ) अद्भुतस्वरूपम् ॥ अत्र प्रमाणम् आश्चर्यो  
वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥  
कठोपनि० बल्ली २ । आश्चर्यस्वरूपत्वाद्ब्रह्माणस्तदेव  
ब्रह्म सर्वेषां चास्माकं ( अनीकं ) सर्वदुःखनाशार्थं काम-  
क्रोधादिशत्रुविनाशार्थं बलमस्ति तद्विहाय मनुष्याणां सर्वं

सुखकरं शरणमन्यन्नास्त्येवेति वेद्यम् । ( स्वाहा ) अथात्र  
 स्वाहाशब्दार्थं प्रमाणं निरुक्तकारा आहुः । स्वाहा कृतयः  
 स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा स्वा वागाहेति स्वं प्राहेति वा  
 स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तासामेषा भवति । निरु० अ० ८ ।  
 खं० २० । स्वाहाशब्दस्यायमर्थः ( सु आहेतिवा ) ( सु )  
 सुष्ठु कोमलं मधुरं कल्याणकरं प्रियं वचनं सर्वैर्मनुष्यैः सदा  
 वक्तव्यम् ( स्वावागाहेति वा ) या स्वकीया वाग् ज्ञानमध्ये  
 वर्त्तते सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम् । ( स्वं  
 प्राहेति वा ) स्वं स्वकीयपदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यम् ।  
 न परपदार्थं प्रतिचेति ( स्वाहुतं ह० ) सुष्ठुरीत्या संस्कृ-  
 त्य संस्कृत्य हविः सदा होतव्यमिति स्वाहाशब्दपठ्यायार्थाः  
 स्वमेव पदार्थं प्रत्याह वयं सर्वदा सत्यं वदाम इति न कदा-  
 चित्परपदार्थं प्रति मिथ्यावदेमेति ॥ ३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

( चित्रं देवाना० ) ( सूर्य आत्मा० ) प्राणी और जड़  
 जगत् का जो आत्मा है उसको सूर्य कहते हैं ( आप्राद्या० )  
 जो सूर्य और अन्य सब लोकों को बनाके धारण और रक्षण  
 करने वाला है ( चक्षुर्मित्रस्य० ) जो मित्र अर्थात् राग द्वेष



रहित मनुष्य तथा सूर्यलोक और प्राण का चक्षु प्रकाश करने वाला है ( वरुणस्या० ) सब उत्तम कामों में जो वर्त्तमान मनुष्य प्राण अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाला है ( चित्रं देवाना० ) जो अद्भुतस्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है ( अनीकं ) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये परम उत्तम बल है वह परमेश्वर ( उदगात् ) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे ॥ ३ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । प-  
श्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं  
शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः  
शतमदीनाः स्यामशरदः शतं भूयश्च श-  
रदः शतात् ॥ ४ ॥ य० अ० ३६ । मं० २४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

( तच्चक्षुः ) यत्सर्वदृक् ( देवहितं ) देवेभ्यो हितं दिव्य-  
गुणवतां धर्मात्मनां विदुषां स्वसेवकानां च हितकारि वर्त्तते  
यत् ( पुरस्तात् ) पूर्वसृष्टेः प्राक् ( शुक्रं ) सर्वजगत्कर्तृ शुद्ध-



मासीदिदानीमपि तादृशमेव चास्ति । तदेव ( उच्चरत् )  
 अर्थात् उत्कृष्टतया सर्वत्र व्याप्तं विज्ञानस्वरूपं ( उद् ) प्रल-  
 यादूर्ध्वं सर्वसामर्थ्यं स्थास्यति ( तत् ) ब्रह्म ( पश्येम शरदः  
 शतं ) वयं शतं वर्षाणि तस्यैव प्रेक्षणं कुर्महे । तत्कृपया  
 ( जीवेम शरदः शतं ) शतं वर्षाणि प्राणान् धारयेमहि  
 ( शृणुयाम शरदः शतं ) तस्य गुणेषु श्रद्धाविश्वासवन्तो  
 वयं तमेव शृणुयाम तथा च तद् ब्रह्म तद्गुणांश्च ( प्रब्रवाम श० )  
 अन्येभ्यो मनुष्येभ्यो नित्यमुपदिशेम ( अदीनाः स्याम श० )  
 एवं च तदुपासनेन तद्विश्वासेन तत्कृपया च शतवर्षपर्य-  
 न्तमदीनाः स्याम भवेम मा कदाचित्कस्यापि समीपे दी-  
 नता कर्तव्या भवेन्नोदारिद्र्यं च सर्वदा सर्वथा ब्रह्मकृपया  
 स्वतंत्रा वयं भवेम तथा ( भूयश्च श० ) वयं तस्यैवानुग्रहेण  
 भूयः शताच्चरदः शतादूर्ध्वेभ्योऽप्यधिकं पश्येम, जीवेम, शृणु-  
 याम, प्रब्रवाम, अदीनाः स्याम, चेत्यन्वयः । अर्थान्नैव म-  
 नुष्यास्तमतिकृपालुं परमेश्वरं त्यक्त्वान्यमुपासीरन् या-  
 चेरन्नित्यभिप्रायः ॥ योन्यां देवतामुपास्ते पशुरेवथ  
 सदेवानाम् । श० का० १४ । अ० ४ । सर्वे मनुष्याः

परमेश्वरमेवोपासीरन् यस्तस्मादन्यस्योपासनां करोति स  
इन्द्रियारामो गर्दभवत्सर्वैरिशष्टैर्विज्ञेय इति निश्चयः ॥ ४ ॥  
कृताञ्जलिरत्यन्तश्रद्धालुर्भूत्वैतैर्मन्त्रैः स्तुवन् सर्वकालसि-  
द्ध्यर्थं परमेश्वरं प्रार्थयेत् ॥ ४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

( तच्चतुर्देवहितं ) जो ब्रह्म सबका द्रष्टा धार्मिक विद्वानों  
का परम हितकारक तथा ( पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ) सृष्टि के  
पूर्व, पश्चात् और मध्य में सत्य स्वरूप से वर्त्तमान रहता  
और सब जगत् का करने वाला है ( पश्येम शरदः शतम् )  
उसी ब्रह्म को हम लोग सौ वर्ष पर्यन्त देखें ( जीवेम शरदः  
शतम् ) जीवें ( शृणुयाम शरदः शतम् ) सुनें ( प्रब्रवाम श० ) उसी  
ब्रह्म का उपदेश करें ( अदीनाः स्याम० ) और उस की कृपा से  
किसी के आधीन न रहें ( भूयश्च शरदः शतात् ) उसी परमे-  
श्वर की आज्ञा पालन और कृपा से सौ वर्षों से उपरान्त भी  
हम लोग देखें, जीवें, सुनें, सुनावें और स्वतन्त्र रहें अर्थात्  
आरोग्य शरीर, दृढ़ इन्द्रिय, शुद्धमन और आनन्द सहित हमारा  
आत्मा सदा रहे । यही एक परमेश्वर सब मनुष्यों का उपास्य-  
देव है जो मनुष्य इसको छोड़ के दूसरे की उपासना करता



(३२)

पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

हैं वह पशु के समान होके सब दिन दुःख भोगता रहता है इसलिये प्रेम में अत्यन्त मग्न होके अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के इन मन्त्रों से स्तुति और प्रार्थना सदा करते रहें ॥ ४ ॥

॥ अथ गुरुमन्त्रः ॥

ओ३म् । यजु० अ० ४० । मं० १७ । भू-  
भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य  
धीमहि ॥ धियो यो नः प्रचोदयात् ॥  
य० अ० ३६ । मं० ३ ॥ ऋ० मंड० ३ ।  
सू० ६२ । मं० १० । एवं चतुर्षु वेदेषु समानो-  
मन्त्रः ॥ १ ॥

॥ भाष्यम् ॥

अस्य सर्वोत्कृष्टस्य गायत्रीमन्त्रस्य संक्षेपेणार्थ उच्यते  
अ उ म् एतत्त्रयं मिलित्वा ओम् इत्यक्षरं भवति ॥ यथाह  
मनुः—अकारं चाप्युकारं च, मकारं च प्रजापतिः । वेदत्रया-  
ग्निरदुहद्भूभुवः स्वरितीति च ॥ मं० अ० २ ॥ एतच्च सर्वोत्तमं



प्रसिद्धतमं परब्रह्मणो नामास्ति । एतेनैकेनैव नाम्ना पर-  
मेश्वरस्यानेकानि नामान्यागच्छन्तीति वेद्यम् । तद्यथा ।  
अकारेण विराडग्निविश्वादीनि । ( विराट् ) विविधं चरा-  
चरं जगद्राजयते प्रकाशयते स विराट् सर्वात्मेश्वरः । ( अ-  
ग्निः ) अच्यते प्राप्यते सत्क्रियते वा वेदादिभिः शास्त्रैर्विद्व-  
द्भिश्चेत्यग्निः परमेश्वरः । ( विश्वः ) विष्टानि सर्वाण्याका-  
शादीनि भूतानि यस्मिन्स विश्वः । यद्वा विष्टोस्ति प्रकृत्या-  
दिषु यः स विश्वः एतदाद्यर्था अकारेण विज्ञेयाः । उका-  
रेण हिरण्यगर्भवायुतैजसादीनि । तद्यथा । ( हिरण्यगर्भः )  
हिरण्यानि सूर्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य तथा सूर्यादीनां  
तेजसां यो गर्भोऽधिष्ठानं स हिरण्यगर्भः । अत्र प्रमाणम् ।  
ज्योतिर्वैहिरण्यं ज्योतिरेषोऽमृतश्चैहिरण्यम् । श० का० ६ ।  
अ० ७ । यशो वै हिरण्यम् । ऐ० पं० ७ । अ० ३ । ( वायुः )  
यो वाति जानाति धारयत्यनन्तबलत्वात्सर्वं जगत्स वायुः  
सचेश्वर एव भवितुमर्हति नान्यः । ( तद्वायुरिति ) मन्त्रवर्णा-  
र्थाद्ब्रह्मणो वायुसंज्ञास्ति ( तैजसः ) सूर्यादीनां प्रकाश-  
कत्वात्स्वयं प्रकाशत्वात्तैजस ईश्वरः । एतदाद्यर्था उकाराद्वि-  
ज्ञातव्याः । मकारेणेश्वरादित्वप्राज्ञादीनि नामानि बोध्या-

नि । तद्यथा । ( ईश्वरः ) ईष्टेऽसौ सर्वशक्तिमान्न्यायकारी-  
श्वरः । ( आदित्यः ) अविनाशित्वादादित्यः परमात्मा ।  
( प्राज्ञः ) प्रजानाति सकलं जगदिति प्रज्ञः प्रज्ञएव प्राज्ञश्च  
परमात्मैवेति । एतदाद्यर्था मकारेण निश्चेतव्याध्येयाश्चेति ॥

॥ अथ महाव्याहृत्यर्थाः संक्षेपतः ॥

भूरिति वै प्राणः । भुवरित्यपानः । स्वरिति व्यानः ।  
इति तैत्तिरीयोपनिषद्वचनम् । प्रपा० ७ । अनु० ६ । ( भूः )  
प्राणयति जीवयति सर्वान् प्राणिनः स प्राणः प्राणादपि प्रि-  
यस्वरूपो वा सच्चेश्वर एवायमर्थो भूशब्दस्य ज्ञेयः ( भुवः ) यो  
मुमुक्षाणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्मात्मनां सर्वं दुःखमपा-  
नयति दूरीकरोति सोऽपानो दयालुरीश्वरोऽस्त्ययं भुवः  
शब्दार्थोऽस्तीति बोध्यम् ( स्वः ) यदभिव्याप्य व्यावयति  
चेष्टयति प्राणादि सकलं जगत्स व्यानः सर्वाधिष्ठानं बृहद्-  
ब्रह्मति खल्वयं स्वः शब्दार्थोऽस्तीति मन्तव्यम् । एतदाद्यर्था-  
महाव्यहृतीनां ज्ञातव्याः ॥ ( सविता ) सुनोति सृजते सुवाते  
वात्पादयति सृजति सकलं जगत्स सर्वपिता सर्वेश्वरः सविता



परमात्मा, सवितुः प्रसव इति मन्त्रपदार्थादुत्पत्तेः कर्त्ता  
योऽर्थोऽस्ति स सवितेत्युच्यत इति मन्तव्यम् ॥ ( वरेण्यं )  
यद्वरं वर्त्तुमर्हमतिश्रेष्ठं तद्वरेण्यम् ( भर्गः ) यन्निरुपद्रवं निष्पापं  
निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरहितं पक्वं परमार्थविज्ञानस्वरूपं  
तद्भर्गः । ( देवस्य ) दीव्यति यः प्रकाशयति स्वत्वानन्दयति  
सर्वं विश्वं स देवः । तस्य ( देवस्य ) ( धीमहि ) तमेव परमात्मानं  
वयं नित्यमुपासीमहि । कस्मै प्रयोजनाय तस्य धारणेन  
विज्ञानादिवलेनैव वयं पुष्टा दृढाः सुखिनश्च भवेमेत्यस्मै  
प्रयोजनाय तथाच ( धियो ) धारणवत्यो बुद्धयः ( यः ) परमे-  
श्वरः ( नः ) अस्माकं ( प्रचोदयात् ) भेरयेत् । हे सच्चिदान-  
न्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अज, हे  
निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्, हे करुणामृतवा-  
रिधे ! ( सवितुर्देवस्य ) तव यद्वरेण्यं भर्गस्तद्वयं धीमहि कस्मै  
प्रयोजनाय ( यः ) सविता देवः परमेश्वरः स नोऽस्माकं  
धियो बुद्धीः प्रचोदयात् । योहि सम्यग्ध्यातः प्रार्थितः सर्व-  
ष्टदेवः परमेश्वरः स्वकृपाकटाक्षेण स्वशक्त्या च ब्रह्मचर्य-  
विद्याविज्ञानसद्धर्भजितेन्द्रियत्वपरब्रह्मानन्दमाप्तिमतीरस्मा-  
कं धियः कुर्यादस्मै प्रयोजनाय । तत्परमात्मस्वरूपं वयं



धीमहीति संक्षेपतो गायत्र्यर्थो विज्ञेयः । एवं प्रातः सायं द्वयोः  
सन्ध्योरेकान्तदेशं गत्वा शान्तो भूत्वा यतात्मा सन् परमे-  
श्वरं प्रतिदिनं ध्यायेत् ॥

॥ भाषार्थः ॥

॥ अथ गुरुमन्त्रः ॥

( ओम् भूर्भुवः स्वः ) जो अकार उकार और मकार के योग से ( ओम् ) यह अक्षर सिद्ध है सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिसमें सब नामों के अर्थ आ-जाते हैं जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है, इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है जैसे अकार से ( विराट् ) जो विविध जगत् का प्रकाश करनेवाला है । ( अग्निः ) जो ज्ञान-स्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है । ( विश्वः ) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है और जो सर्वत्र प्रविष्ट है । इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिये । उकार से ( हिरण्यगर्भः ) जिसके गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्यादि लोक हैं और जो प्रकाश करनेवाले सूर्यादि लोकों का उत्पन्न करनेवाला है । इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं, ज्योति के नाम हिरण्य,

अमृत और कीर्ति हैं । ( वायुः ) जो अनन्त बलवाला और सब जगत् का धारण करनेहारा है ( तैजसः ) जो प्रकाश-स्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार-मात्र से जानना चाहिये । तथा मकार से ( ईश्वरः ) जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है ( आदित्यः ) जो नाशरहित है ( प्राज्ञः ) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना, यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया । अब संक्षेप से महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं—( भूरिति वै प्राणः ) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है । इससे परमेश्वर का नाम ( भूः ) है ( भुवरित्यपानः ) जो मुक्ति की इच्छा करने-वालों मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इसलिये परमेश्वर का नाम ( भुवः ) है । ( स्वरिति व्यानः ) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता और सब का ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इससे परमेश्वर का नाम ( स्वः ) है, यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिखदिया ॥ अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं—( सवितुः ) जो सब जगत् का उत्पन्न



करनेद्वारा और ऐश्वर्य का देनेवाला है, ( देवस्य ) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करनेवाला और सब सुखों का दाता है, ( वरेण्यं ) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है, ( भर्गः ) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है ( तत् ) उसको ( धीमहि ) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें, किस प्रयोजन के लिये कि ( यः ) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह ( नः ) हमारी ( धियः ) बुद्धियों को ( प्रचोदयात् ) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे इसलिये सब लोगों को चाहिये कि सत् चित् आनन्दस्वरूप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु सब जगत् के जनक और धारण करनेहारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्यदेहरूप पृथक् के चार फल हैं वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हों । यह गायत्री मन्त्र का अर्थ संक्षेप से होचुका ॥

अथ समर्पणम् ॥

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासना-  
दिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः । तत्  
ईश्वरं नमस्कुर्यात् ॥



नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः  
शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय  
च शिवतराय च ॥ १ ॥ य० अ० १६ । मं०  
४१ ॥

॥ भाष्यम् ॥

( नमः शम्भवाय च ) यः सुखस्वरूपः परमेश्वरोऽस्ति  
तं वयं नमस्कुर्महे । ( मयोभवाय च ) यः संसारे सर्वो-  
त्तमसौख्यप्रदातास्ति तं वयं नमस्कुर्महे । ( नमः शङ्कराय  
च ) यः कल्याणकारकः सन् धर्मयुक्तानि कार्याण्येव  
करोति तं वयं नमस्कुर्महे । ( मयस्कराय च ) यः स्वभ-  
क्तान् सुखकारकत्वाद्धर्मकार्येषु युनक्ति तं वयं नमस्कुर्महे ।  
( नमः शिवाय च शिवतराय च ) योऽत्यन्तमङ्गलस्वरूपः  
सन् धार्मिकमनुष्येभ्यो मोक्षसुखप्रदातास्ति तस्मै परमेश्व-  
रायास्माकमनेकधा नमोऽस्तु ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस प्रकार से सब मन्त्रों के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक्

उपासना करके आगे समर्पण करे कि हे ईश्वर दयानिधे !  
 आपकी कृपा से जो २ उत्तम काम हम लोग करते हैं वे सब  
 आपके अर्पण हैं जिस से हम लोग आपको प्राप्त होके धर्म जो  
 सत्य न्यायका आचरण करना है, अर्थ जो धर्म से पदार्थों की  
 प्राप्ति करना है, काम जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन  
 करना है और मोक्ष जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द  
 में रहना है। इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त  
 हो ॥ इति समर्पणम् ॥ इस के पीछे ईश्वर को नमस्कार करे  
 ( नमः शंभवाय च ) जो सुखस्वरूप, ( मयोभवाय च ) संसार  
 के उत्तम सुखोंका देने वाला, ( नमः शङ्कराय च ) कल्याण  
 का कर्त्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला,  
 ( मयस्कराय च ) अपने भक्तों को सुख का देनेवाला और  
 धर्म कामों में युक्त करने वाला, ( नमः शिवाय च शिवत-  
 राय च ) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को  
 मोक्ष सुख देनेहारा है उसको हमारा बारंबार नमस्कार हो ॥

इति सन्ध्योपासनविधिः ॥

अथाग्निहोत्रसन्ध्योपासनयोः प्रमाणानि ॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः

सौमनस्यं दाता । वसोर्वसोर्वसुदानं एधि वयं  
 त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ १ ॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो  
 अग्निः सायंसायं सौमनस्यं दाता । वसोर्वसार्व-  
 सुदानं एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥ २ ॥  
 अथर्व० कां० १९ । अनु० ७ मं० ३ । ४ ॥ तस्माद्ब्राह्मणोऽहो-  
 रात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते । स ज्योतिष्या ज्योतिषो द-  
 र्शनात्सोऽस्याः कालः सा सन्ध्या तत् सन्ध्यायाः सन्ध्यात्व-  
 म् । षड्विंश ब्रा० प्रपा० ४ । खं० ५ । उद्यन्तमस्तं यान्तमा-  
 दित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥  
 तैत्तिरीय आ० २ । प्रपा० २ । अनु० २ ॥ न तिष्ठति तु यः पूर्वा  
 नोपास्ते यश्च परिचमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्वि-  
 जकर्मणः ॥ मनु० अ० २ । श्लो० १० ३ ॥ ( सायंसायं ) अयं  
 नोस्माकं गृहपतिर्गृहात्मपालको भौतिकः परमेश्वरश्च ( प्रातः  
 प्रातः ) तथा ( सायंसायं ) च परिचरितस्सूपासितः सन्  
 ( सौमनस्य दाता ) आरोग्यस्यानन्दस्य च दाता भवति तथा  
 ( वसोर्व० ) उत्तमोत्तमपदार्थस्य च । अतएव परमेश्वरः ।  
 ( वसुदानः ) वसुप्रदातास्ति । हे परमेश्वर ! एवंभूतस्त्वमस्माकं



राज्यादिव्यवहारे हृदये च ( एधि ) प्राप्तो भव तथा भौतिकोऽप्यग्निरत्र ग्राह्यः । ( वयं त्वे ) हे परमेश्वर ! एवं त्वा त्वामिन्धानाः प्रकाशयितारस्सन्तो वयं ( तन्वं ) शरीरं ( पुषेम पुष्टं कुर्यामहि । तथाग्निहोत्रादिकर्मणां भौतिकमग्निमिन्धानाः प्रदीपयितारः सन्तः सर्वे वयं पुष्येम ॥ ३ ॥ ( प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो ) अस्यार्थः पूर्ववद्विज्ञेयः परन्त्वयं विशेषः—वयमग्निहोत्रमीश्वरोपासनं च कुर्वन्तः सन्तः ( शतहिमाः ) शतं हिमाहेमन्तर्तवो गच्छन्ति येषु सम्बत्सरेषु ते शतहिमा यावत्स्युस्तावत् ( ऋधेम ) वर्द्धेमहि । एवं कृतेन कर्मणा नोस्माकं नैव कदाचिद्धानिर्भवेदिति च्छामः ॥ ४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

( सायंसायं ) यह हमारा गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक भौतिक अग्नि और परमेश्वर प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल श्रेष्ठ उपासना को प्राप्त होके ( सौमनस्य दाता ) जल्द आरोग्य और आनन्द का देनेवाला है उसी प्रकार उत्तम से उत्तम वस्तु का देनेवाला है इसी से परमेश्वर ( वसुदानः ) वसु अर्थात् धन का देनेवाला प्रसिद्ध है । हे परमेश्वर ! इस प्रकार आप मेरे राज्य आदि व्यवहार और

चित्त में प्रकाशित रहिये । तथा इस मन्त्र में अग्निहोत्र आदि करने के लिये भौतिक अग्नि भी ग्रहण करने योग्य है ( व-यंत्वे० ) हे परमेश्वर ! पूर्वोक्त प्रकार से हम आप को प्रकाश करते हुए अपने शरीर को ( पुषेम ) पुष्ट करें इसी प्रकार भौ-तिक अग्नि को प्रज्वलित करते हुए सब संसार की पुष्टि करके पुष्ट हों ( प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो० ) इस मन्त्र का अर्थ पूर्व मन्त्र के तुल्य जानो परन्तु यह विशेष है कि अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना करते हुए हम लोग ( शतहिमाः ) सौ हेमन्त ऋतु बीत जायें जिन वर्षों में अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त ( ऋध्वेम ) धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त होते रहें और पूर्वोक्त प्रकार से अग्निहोत्रादि कर्म करके हमारी हानि कभी न हो ऐसी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ ( तस्माद्ब्राह्मणो० ) ब्रह्म का उपासक, मनुष्य रात्रि और दिवस के सन्धि समय में नित्य उपासना करे, जो प्रकाश और अप्रकाश का संयोग है वही सन्ध्या का काल जानना और उस समय में जो सन्ध्योपासन की ध्यान क्रिया करनी होती है वही है सन्ध्या है और जो एक ईश्वर को छोड़ के दूसरे की उपासना न करनी तथा सन्ध्योपासन कभी न छोड़ देना इसीको सन्ध्योपासन कहते हैं ॥ ३ ॥ ( उच-



न्तमस्तं यान्तं० ) जब सूर्य के उदय और अस्त का समय आये उसमें नित्य प्रकाशस्वरूप आदित्य परमेश्वर की उपासना करता हुआ ब्रह्मोपासक ही मनुष्य संपूर्ण सुखको प्राप्त होता है । इससे अब मनुष्यों को उचित है कि दो समय में परमेश्वर की नित्य उपासना किया करें ॥ ४ ॥ इसमें मनुस्मृति की भी साक्षी है कि दो घड़ी रात्रि से लेकर सूर्योदय पर्यन्त प्रातःसन्ध्या और सूर्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्यन्त सायंकाल में सविता अर्थात् सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर की उपासना गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक नित्य करें ॥ ५ ॥ ( न तिष्ठति तु० ) जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासन को नहीं करता उसको शूद्र के समान समझ कर द्विजकुल से अलग करके शूद्रकुल में रख देना चाहिये । वह सेवाकर्म किया करे और उस के विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये, इससे सब मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जानकर पूर्वोक्त दो समयों में जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें ॥ इत्यग्निहोत्रसन्ध्योपासनप्रमाणानि ॥

इति प्रथमो ब्रह्मयज्ञः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयोऽग्निहोत्रो देवयज्ञः प्रोच्यते ॥

उसका आचरण इस प्रकार से करना चाहिये कि सन्ध्यो-



पासन करने के पश्चात् अग्निहोत्र का समय है । उसके लिये सोना, चांदी, तांबा लोहा वा मिट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिये जिसका परिमाण सोलह अङ्गुल चौड़ा, सोलह अङ्गुल गहिरा और उसका तला चार अङ्गुल का लंबा चौड़ा रहे । एक चमसा जिसकी डंडी सोलह अङ्गुल और उसके अग्रभाग में अंगूठा की यवरेखा के प्रमाण से लम्बा चौड़ा आचमनी के समान बनवा लेवे सो भी सोना चांदी वा पलाशादि लकड़ी का हो । एक आज्यस्थाली अर्थात् घृतादि सामग्री रखने का पात्र सोना चांदी वा पूर्वोक्त लकड़ी का बनवा लेवे । एक जल का पात्र तथा एक चिमटा और पलाशादि की लकड़ी समिधा के लिये रख लेवे । पुनः घृत को गर्मकर छान लेवे । और एक सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर पीस के मिलाकर उक्त पात्र के तुल्य दूसरे पात्र में रख छोड़े । जब अग्निहोत्र करे तब शुद्ध स्थान में बैठ के पूर्वोक्त सामग्री पास रख लेवे । जल के पात्र में जल और घी के पात्र में एक छटांक वा अधिक जितना सामर्थ्य हो उतने शोधे हुए घी को निकाल कर अग्नि में तपा के सामने रख लेवे । तथा चमसे को भी रख लेवे । पुनः उन्हीं पलाशादि वा चन्दनादि लकड़ियों

को वेदी में रखकर उनमें आगी धरके पंचे से प्रदीप्त कर नीचे लिखे मन्त्रों में से एक २ मन्त्र से एक २ आहुति देता जाय, प्रातःकाल वा सायंकाल में । अथवा एक समय में करे तो सब मन्त्रों से सब आहुति किया करे ॥

॥ अथाग्निहोत्रहोमकरणार्थाः मन्त्राः ॥

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥  
 सूर्योर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ ज्योतिः  
 सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ सजूर्देवेन स-  
 वित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ॥ जुषाणः सूर्यो-  
 वेतु स्वाहा ॥

एते चत्वारो मन्त्राः प्रातःकालस्य सन्तीति बोध्यम् ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ अ-  
 ग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥

अग्निर्ज्योतिरिति मन्त्रं मनसोच्चार्य तृतीयाहुतिर्देया ॥३॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषेन्द्रवत्या ॥

जुषाणोऽग्निर्वेतु स्वाहा ॥ य० अ० ३ ।  
मं० ६ । १० ॥

एते सायंकालस्य मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम् ॥

अथोभयोः कालयोरग्निहोत्रे होमकरणार्थास्समाना मन्त्राः

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ ओं  
भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ ओं स्वरादित्याय  
व्यानाय स्वाहा ॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवा-  
यवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥  
ओं आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरो  
स्वाहा ॥ ओं सर्व वै पूर्णं स्वाहा ॥

॥ भाष्यम् ॥

(सूर्यो०) यश्चराचरात्मा ज्योतिषां प्रकाशकानाम-



पिज्योतिःप्रकाशकः सर्वप्राणः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै स्वाहा-  
 ऽर्थात् तदाज्ञापालनार्थं सर्वजगदुपकारायैकाहुतिं दद्वः ॥ १ ॥  
 ( सूर्याव० ) यो वर्चः सर्वविद्यो ज्योतिषां ज्ञानवतां जी-  
 वानामपि वर्चोन्तर्यामितया सत्योपदेष्टा सर्वात्मा सूर्यः  
 परमेश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ ५ ॥ ( ज्योतिः सूर्यः० ) यः  
 स्वयंप्रकाशः सर्वजगत्प्रकाशकः सूर्यो जगदीश्वरोऽस्ति  
 तस्मै० ॥ ३ ॥ ( सजू० ) यो देवेन द्योतकेन सवित्रा  
 सूर्यलोकेन जीवेन च सह तथा ( इन्द्रवत्या ) सूर्यप्रकाश-  
 वत्योषसाथवा जीववत्या मानसवृत्या ( सजूः ) सह वर्त्तमानः  
 परमेश्वरोऽस्ति सः ( जुषाणः ) संप्रीत्या वर्त्तमानः सन्  
 ( सूर्यः ) सर्वात्मा कृपाकटाक्षेणास्मान् वेतु विद्यादिसद्-  
 गुणेषु जातविज्ञानान् करोतु तस्मै० ॥ ४ ॥ इमाश्चतस्र आ-  
 हुतीः प्रातरग्निहोत्रे कुर्वन्तु । अथ सायंकालाहुतयः ।  
 ( अग्नि० ) योऽग्निर्ज्ञानस्वरूपो ज्ञानप्रदश्च ज्योतिषां  
 ज्योतिः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ १ ॥ ( अग्निर्वर्चो ) यः  
 पूर्वोक्तोऽग्निरनन्तविद्य आत्मप्रकाशकः सर्वपदार्थप्रकाश-  
 कश्च सूर्यादियोतकोऽस्ति तस्मै० ॥ २ ॥ अग्निर्ज्योति-  
 रित्यनेनैव तृतीयाहुतिर्देया तदर्थश्च पूर्ववत् ॥ ३ ॥

( सजूर्दे० ) यः पूर्वोक्तेन देवेन सवित्रा सह परमेश्वरः सजूर-  
 स्ति । यश्चेन्द्रवत्या वायुचन्द्रवत्या रात्र्या सह सजूर्वर्त्तते  
 सोऽग्निः ( जुषाणः ) संप्रीतोस्मान् वेतु नित्यानन्दमोक्षसुखा-  
 य स्वकृपया कामयतु तस्मै जगदीश्वराय स्वाहेति पूर्ववत् ॥४॥  
 एताभिः सायंकालेऽग्निहोत्रिणो जुहति । एकस्मिन्काले स-  
 र्वाभिर्वा ( सर्व्वै० ) हे जगदीश्वर ! यदिदमस्माभिः परोपका-  
 रार्थं कर्म क्रियते भवत्कृपया परोपकाराय त्वं भवत्विति । एत-  
 दर्थमेतत्कर्म तुभ्यं समर्प्यते ॥ ( ओं भूर० ) एतानि सर्वाणीश्व-  
 रनामान्येव वेद्यानि । एतेषामर्था गायत्र्यर्थे द्रष्टव्याः ॥ एवं प्रातः  
 सायं सन्ध्योपासनकरणानन्तरमेतैर्मन्त्रैर्होमं कृत्वाऽग्रे या-  
 वदिच्छा तावद्गायत्रीमंत्रेण स्वाहान्तेन होमं कुर्यात् ॥ अग्नये  
 परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय च होत्रं हवनं यस्मिन् क-  
 र्मणि क्रियते तदग्निहोत्रम् ॥ सुगन्धिपुष्टिमिष्टबुद्धिवृद्धिशौर्य-  
 धैर्यबलकररोगनाशकरैर्गुणैर्युक्तानां द्रव्याणां होमकरणेन  
 वायुवृष्टिजलयोः शुद्ध्या पृथिवीस्थपदार्थानां सर्वेषां शुद्धवा-  
 युजलयोगादत्यन्तोत्तमतया सर्वेषां जीवानां परमसुखं भ-  
 वत्येवातः । तत्कर्मकर्तृणां जनानां तदुपकारतयाऽत्यन्तसुख-  
 लाभो भवतीश्वरसन्नताचेत्येतदाद्यर्थमग्निहोत्रकरणम् ॥



## ॥ भाषार्थ ॥

( सूर्योज्यो० ) जो चराचर का आत्मा प्रकाशस्वरूप और सूर्यादि प्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है उसकी प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं । ( सूर्योव० ) जो सूर्य परमेश्वर हम को सब विद्याओं का देनेवाला और हम लोगों से उनका प्रचार करानेवाला है उसी के अनुग्रह से हम लोग अग्निहोत्र करते हैं । ( ज्योतिः सूर्यः० ) जो आप प्रकाशमान् और जगत् का प्रकाश करनेवाला सूर्य अर्थात् सब संसार का ईश्वर है उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लोग होम करते हैं । ( सज्जूर्देवेन० ) जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्यापक, वायु और दिन के साथ परिपूर्ण, सब पर प्रीति करनेवाला और सब के अंग २ में व्याप्त है । वह अग्नि परमेश्वर हमको विदित हो । उसके अर्थ हम होम करते हैं । इन चार आहुतियों को प्रातःकाल अग्निहोत्र में करना चाहिये, ( अग्निज्योति० ) अग्नि जो परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप है उसकी आज्ञा से हम परोपकार के लिये होम करते हैं और उसका रचा हुआ जो यह भौतिकाग्नि है जिसमें द्रव्य डालते हैं सो इसलिये है कि



उन द्रव्यों को परमाणु करके जल और वायु, वृष्टि के साथ मिलाके उन को शुद्ध करदे जिससे सब संसार सुखी होके पुरुषार्थी हो । ( अग्निर्वर्चो० ) अग्नि जो परमेश्वर वर्च अर्थात् सब विद्याओं का देनेवाला तथा भौतिक अग्नि आरोग्य और बुद्धि बढ़ाने का हेतु है इसलिये हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं यह दूसरी आहुति हुई । तीसरी आहुति प्रथम मन्त्र से मौन करके करनी चाहिये और चौथी ( सजूर्देवेन० ) जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक, वायु और रात्रि के साथ पूर्ण, सब पर प्रीति करनेवाला और सबके अंग २ में व्याप्त है वह अग्नि परमेश्वर हमको प्राप्त हो जिसके लिये हम होम करते हैं ॥ अब जिन मन्त्रों से दोनों समय में होम किया जाता है उनको लिखते हैं ( ओं भू० ) इन मन्त्रों में जो २ नाम हैं वे सब ईश्वर के ही जानो । उनके अर्थ गायत्री मन्त्र के अर्थ में देखने योग्य हैं और ( आपो० ) आप जो प्राण परमेश्वर के प्रकाश को प्राप्त होके रस अर्थात् नित्यानन्द मोक्षस्वरूप है उस ब्रह्म को प्राप्त होकर तीनों लोकों में हम लोग आनन्द से विचरें । इस प्रकार प्रातः और सायंकाल संध्योपासन के पीछे इन पूर्वोक्त मन्त्रों से होम करके अधिक होम करने की जह्वांतक

(५२)

॥ पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

इच्छा हो बहंतक स्वाहा अन्त में पढ़कर गायत्री मन्त्र से होम करें। अग्नि वा परमेश्वर के लिये जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञा पालन के अर्थ होत्र जो हवन अर्थात् दान करते हैं उसे अग्निहोत्र कहते हैं। केशर, कस्तूरी आदि सुगन्ध। घृत दुग्ध आदि पुष्ट। गुड़ शर्करा आदि मिष्ट तथा सोम-लतादि ओषधि रोगनाशक जो ये चार प्रकार के बुद्धि, वृद्धि, श्रुता, धीरता, बल और आरोग्य करनेवाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं उनका होम करने से पवन और वर्षाजल की शुद्धि करके शुद्ध पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता होती है उससे सब जीवों को परम सुख होता है। इस कारण उस अग्निहोत्र कर्म करनेवाले मनुष्यों को भी जीवों के उपकार करने से अत्यन्त सुख का लाभ होता है तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है ऐसे २ प्रयोजनों के अर्थ अग्निहोत्रादि का करना अत्यन्त उचित है ॥ इत्यग्निहोत्रविधिः समाप्तः ॥

अथ तृतीयः पितृयज्ञः ॥

तस्य द्वौ भेदौ स्तः। एकस्तर्पणाख्यो द्वितीयः श्राद्धा-  
ख्यश्च। तत्र येन कर्मणा विदुषो देवानृषीन् पितृंश्च तर्प-



यन्ति सुखयन्ति तत् तर्पणम् । तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं  
 क्रियते तच्छ्राद्धं वेदितव्यम् । तदेतत् कर्म विद्वत्सु विद्यमा-  
 नेष्वेव घट्यते । नैव मृतकेषु कुतः तेषां सन्निकर्षाभावेन  
 सेवनाशक्यत्वात् । मृतकोद्देशेन यत्क्रियते नैव तेभ्यस्त-  
 त्प्राप्तं भवतीति व्यर्थापत्तेः । तस्माद्विद्यमानाभिप्रायेणैतत्क-  
 र्म्मोपदिश्यते । सेव्यसेवकसन्निकर्षात्सर्वमेतत्कर्तुं शक्यत  
 इति । तत्र सत्कर्त्तव्यास्त्रयः सन्ति । देवाः, ऋषयः, पित-  
 रश्च, तत्र देवेषु प्रमाणम् ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा  
 धियः ॥ पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः  
 पुनीहिमां ॥ य० अ० १६ । मं० ३६ ॥  
 द्वयं वाऽइदं न तृतीयमस्ति । सत्यं चैवा-  
 नृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या  
 इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो  
 देवानुपैति ॥ स वै सत्यमेव वदेत् । एतद्धि

(५४)

॥ पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्तं यशो  
यशोह भवति य एवं विद्वांससत्यं वहति ॥  
शत० कां० १ । अ० १ । ब्रा० १ । कं०  
४ । ५ ॥ विद्वांसो हि देवाः ॥ शत०  
कां० ३ । अ० ७ । ब्रा० ६ । कं० १० ॥

॥ भाष्यम् ॥

( पुनन्तु० ) हे ( जातवेदः ) परमेश्वर ! ( मा ) मां  
( पुनीहि ) सर्वथा पवित्रं कुरु भवन्निष्ठा भवदाज्ञापालिनो  
( देवजनाः ) विद्वांसः श्रेष्ठा ज्ञानिनो विद्यादानेन ( मा )  
मां ( पुनन्तु ) पवित्रं कुर्वन्तु तथा ( पुनन्तु मनसा धियः )  
भवदत्तविज्ञानेन भवद्विषयध्यानेन वा नो बुद्धयः पुनन्तु  
पवित्रा भवन्तु ( पुनन्तु विश्वा भूतानि० ) विश्वानि सर्वाणि  
संसारस्थानि भूतानि पुनन्तु भवत्कृपया पवित्राणि सुखा-  
नन्दयुक्तानि भवन्तु । ( द्वयं वा० ) मनुष्याणां द्वाभ्यां  
लक्षणाभ्यां द्वे एव संज्ञे भवतः । देवाः, मनुष्याश्चेति ।  
तत्र सत्यं चैवानृतं च कारणे स्तः ( सत्यमेव० ) यत्सत्य-



वचनं सत्यमानं सत्त्वं कर्मैतद्देवानां लक्षणं भवति तथैतद्  
नृतं वचनमनृतं मानमनृतं कर्म चेति मनुष्याणाम् । योऽ-  
नृतात् पृथग्भूत्वा सत्यमुपेयात् स देवजातौ परिगण्यते ।  
यश्च सत्यात् पृथग्भूत्वाऽनृतमुपेयात्स मनुष्यसङ्गां लभेत  
तस्मात्सत्यमेव सर्वदा वदेन्मन्येत्कुरुयाच्च यत्सत्यं व्रतमस्ति  
तदेव देवा आचरन्ति स यशस्विनां मध्ये यशस्वीति देवो  
भवति तद्विपरीतो मनुष्यश्च तस्मादत्र विद्वांस एव देवा-  
स्सन्तीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं । उसके दो भेद हैं एक  
तर्पण, दूसरा श्राद्ध । तर्पण उसे कहते हैं जिस कर्म से  
विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं ।  
उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करना है सो  
श्राद्ध कहाता है । यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो  
प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है मृतकों में नहीं क्योंकि उनकी  
प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है । इसी से उनकी  
सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती किन्तु जो उनका  
नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता

इसलिये मृतकों को सुख पहुँचाना सर्वथा असंभव है इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से तर्पण और श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम होसकता है। तर्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन हैं। देव, ऋषि और पितर। उनमें से देवों में प्रमाण-( पुनंतु० ) हे जातवेद परमेश्वर आप सब प्रकार से मुझको पवित्र करें। जिनका चित्त आप में है तथा जो आपकी आज्ञा पालते हैं वे विद्वान् श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष भी विद्यादान से मुझ को पवित्र करें। उसी प्रकार आपका दिया जो विशेष ज्ञान वा आपके विषय का ध्यान उससे हमारी बुद्धि पवित्र हों ( पुनन्तु विश्वाभूतानि० ) और संसार के सब जीव आपकी कृपा से पवित्र और आनन्दयुक्त हों ( द्वयं वा० ) दो लक्षणों से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं अर्थात् देव और मनुष्य। वहां सत्य और झूठ दो कारण हैं। ( सत्यमेव० ) जो सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य कर्म करनेवाले हैं वे देव और वैसे ही झूठ बोलने, झूठ मानने और झूठ कर्म करने वाले मनुष्य कहाते हैं। जो झूठ से अलग होके सत्य को प्राप्त हों वे देवजाति में गिने जाते हैं और जो सत्य से अलग हो के झूठ को प्राप्त हों



वे मनुष्य असुर और राक्षस कहे हैं, इससे सब काल में सत्य ही कहे, माने और करे । सत्यव्रत का आचरण करनेवाला मनुष्य यशस्वियों में यशस्वी होने से देव और उससे उलटे कर्म करनेवाला असुर होता है । इस कारण से यहाँ विद्वान् ही देव हैं ॥

॥ अथर्षिप्रमाणम् ॥

तं यज्ञं वर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।  
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च  
ये ॥ य० अ० ३१ । मं० ६ ॥ अथ यदेवा-  
नुब्रवीत । तेनर्षिभ्य ऋणं जायते तद्धयेभ्य  
एतत्करोत्यृषीणां निधिगोप इति ह्यनूचान-  
माहुः ॥ शत० कां० १ । अ० ७ । कं० ३ ॥  
अथार्षेयं प्रवृणोते । ऋषिभ्यश्चैवैनमेतद्देवेभ्यश्च  
निवेदयत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति

तस्मादार्पेयं प्रवृणीते ॥ शत० कां० १ । प्रपा०  
३ । अ० ४ । कं० ३ ॥

॥ भाष्यम् ॥

तं यज्ञमिति मन्त्रः सृष्टिविद्याविषये व्याख्यातः । ( अथ  
यदेवा० ) अथेत्यनन्तरं यत्सर्वविद्यां पठित्वानुवचनमध्या-  
पनं कर्मास्ति तद्विहितमस्ति । तेनाध्ययनाध्यापनकर्मण-  
र्षिभ्यो देयमृणं जायते । यत्तेषामृषीणां सेवनं करोति तदे-  
तेभ्य एव सुखकारी भवति । यः सर्वविद्याविद्भूत्वाध्यापयति  
तमनूचानमृषिमाहुः । ( अथार्पेयं प्रवृणीते० ) यो मनुष्यः  
पठित्वा पाठनाख्यं कर्म प्रवृणीते तदार्पेयं कर्मास्ति । य एवं  
कुर्वन्ति तेभ्य ऋषिभ्यो देवेभ्यश्चैतत्प्रियकरं वस्तुसेवनं च  
निवेदयति सोऽयं विद्वान् महावीर्यो भूत्वा यज्ञं विद्वानाख्यं  
( प्रापत् ) प्राप्नोति ते चैनं विद्यार्थिनं विद्वांसंकुट्युः । यश्च  
विद्वानस्ति यश्चापि विद्यां गृह्णाति स ऋषिसंज्ञां लभते ।  
तस्मादिदमार्पेयं कर्म सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकार्यम् ॥



## ॥ भाषार्थ ॥

( तं यज्ञं० ) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका के सृष्टिविद्या विषय में कह दिया है, अब इसके अनन्तर सब विद्याओं को पढ़ के जो पढ़ाना है वह ऋषिकर्म कहाता है उस पढ़ने और पढ़ाने से ऋषियों का ऋण अर्थात् उनको उत्तम २ पदार्थ देने से निवृत्त होता है और जो इन ऋषियों की सेवा करता है वह उनको सुख करनेवाला होता है ( निधिगोपः ) यही व्यवहार अर्थात् विद्या कोश का रक्षा करने वाला होता है । जो सब विद्याओं को जान के सब को पढ़ाता है उसको ऋषि कहते हैं ॥ ( अथार्षेयं प्रवृणीते० ) जो पढ़के पढ़ाने के लिये विद्यार्थी का स्वीकार करना है सो आर्षेय अर्थात् ऋषियों का कर्म कहाता है जो उस कर्म को करते हैं उन ऋषियों और देवों के लिये प्रसन्न करनेवाले पदार्थों का निवेदन तथा सेवा करता है वह विद्वान् अति पराक्रमी हो के विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है । जो विद्वान् और विद्या को ग्रहण करनेवाला है उसका ऋषि नाम होता है । इस कारण से इस आर्षेय कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥

( ६० )

॥ पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

॥ अथ पितृषु प्रमाणम् ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं  
परिस्तुतम् ॥ स्वधा स्थं तर्पयत मे पितॄन् ॥  
य० अ० २ । मं० ३४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

( ऊर्जं वहन्ती० ) ईश्वरः सर्वान्प्रत्याज्ञां ददाति सर्वे  
मनुष्या एव जानीयुर्वदेयुश्चाज्ञापयेयुरिति, मे पितॄन् मम-  
पितृपितामहादीन् आचार्यादीश्च यूयं सर्वे मनुष्याः तर्पयत  
सेवया प्रसन्नान् कुरुत तथा ( स्वधा स्थ ) सत्यविद्याभक्ति  
स्वपदार्थधारिणो भवत । केन केन पदार्थेन ते सेवनीया  
इत्याह । ऊर्जं पराक्रमं प्रापिकाः सुगन्धिता हृद्या अपस्ते-  
भ्यो नित्यं दद्युः ( अमृतं ) अमृतात्मकमनेकविधरसं ( घृतं )  
आज्यं ( पयः ) दुग्धं ( कीलालं ) अनेकविधसंस्कारैः  
सम्पादितमन्नं मात्तिकं मधु च ( परिस्तुतं ) कालपर्क  
फलादिकं च दत्वा पितॄन् प्रसन्नान् कुर्युः ॥ १ ॥

॥ भाषार्थ ॥

( ऊर्जं वहन्ती० ) पिता वा स्वामी अपने पुत्र पौत्र स्त्री  
वा नौकरों को सब दिन के लिये आज्ञा दे के कहे कि ( तर्पयत



मे पितृन् ) जो पिता पितामहादि माता मातामहादि तथा आचार्य्य और इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग अवस्था अथवा ज्ञान से वृद्ध मान्य करने योग्य हों उन सब के आत्माओं को यथा-योग्य सेवा से प्रसन्न किया करो । सेवा करने के पदार्थ ये हैं ।

( ऊर्जं वहन्ती ) जो उत्तम २ जल ( अमृतम् ) अनेक-विधरस ( घृतं ) घी ( पयः ) दूध ( कीलालं ) अनेक संस्कारों से सिद्ध किये रोगनाश करने वाले उत्तम २ अन्न ( परिश्रुतम् ) सब प्रकार के उत्तम २ फल हैं इन सब पदार्थों से उनकी सेवा सदा करते रहो जिससे उनका आत्मा प्रसन्न होके तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे कि उससे तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो ( 'स्वधास्थ०' ) हे पूर्वोक्त पितृलोगो ! तुम सब हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो । और जिस २ पदार्थ की तुम को अपने लिये इच्छा हो जो जो हम लोग कर सकें उस २ की आज्ञा सदा करते रहो । हम लोग मन वचन कर्म से तुम्हारे सुख करने में स्थित हैं । तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाओ । जैसे तुम लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है वैसे हम को भी आप लोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिये जिससे हम को कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो ॥ १ ॥

( ६२ )

॥ पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

॥ अथ पितॄणां परिगणनम् ॥

येषां पितृसंज्ञा ये सेवितुं योग्याश्च ते  
क्रमशो लिख्यन्ते । सोमसदः । अग्निष्वात्ताः ।  
वर्हिषदः । सोमपाः । हविर्भुजः । आज्यपाः ।  
सुकालिनः । यमराजाश्चेति ।

॥ भाष्यम् ॥

( सो० ) सोमे ईश्वरे सोमयागे वा सीदन्ति ये सोम-  
गुणाश्च ते सोमसदः । ( अ० ) अग्निरीश्वरः सुष्ठुतया आत्तो  
गृहीतो यैस्ते अग्निष्वात्ताः यद्वा अग्नेर्गुणज्ञानात्पृथिवी,  
जलं, व्योम, यानयन्त्ररचनादिका, पदार्थविद्या सुष्ठुतया  
आत्ता गृहीता यैस्ते । ( ब० ) वर्हिषि सर्वोत्कृष्टे ब्रह्मणि  
शमदमादिषूतमेषु गुणेषु वा सीदन्ति ते वर्हिषदः । ( सो० ) य-  
ज्ञेनोत्तममौषधिरसं पिबन्ति पाययन्ति वा ते सोमपाः । ( ह० )  
हविर्हुतमेव यज्ञेन शोधितं वृष्टिजलादिकं भोक्तुं भोजयितुं  
वा शीलमेषां ते हविर्भुजः । ( आ० ) आज्यं घृतम् । यद्वा अज



गतिक्षेपणयोर्धात्वर्थादाज्यं विज्ञानम् । तद्दानेन पान्ति  
 रक्षन्ति पाययन्ति रक्षयन्ति ये विद्वांसस्ते आज्यपाः ।  
 ( सु० ) ईश्वरविद्योपदेशकरणस्य ग्रहणस्य च शोभनः  
 कालो येषां ते । यद्वा ईश्वरज्ञानप्राप्त्या सुस्वरूपः सदैव  
 कालो येषां ते सुकालिनः । ( य० ) ये पक्षपातं विहाय  
 न्यायव्यवस्थाकर्तारस्सन्ति ते यमराजाः ॥

॥ भाषार्थ ॥

( सो० ) जो ईश्वर और सोमयज्ञ में निपुण और जो  
 शान्त्यादिगुण सहित हैं वे सोमसद कहाते हैं ( अ० )  
 अग्नि जो परमेश्वर वा भौतिक उनके गुण ज्ञात करके जिनने  
 अच्छे प्रकार अग्निविद्या सिद्ध की है उनको अग्निस्वात्ता  
 कहते हैं । ( ब० ) जो सब से उत्तम परब्रह्म में स्थिर होके शम दम  
 सत्य विद्यादि उत्तम गुणों में वर्त्तमान हैं उनको वर्हिषद् कहते  
 हैं । ( सो० ) जो यज्ञ करके सोमलतादि उत्तम ओषधियों के रस  
 के पान करने और कराने वाले हैं तथा जो साम विद्या को जानते  
 हैं उनको सोमपा कहते हैं ( ह० ) जो अग्निहोत्रादि यज्ञ करके  
 वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपकार करते

और जो यज्ञ से अन्नजलादि को शुद्ध करके खाने पीने वाला है उन को हविर्भुज कहते हैं ( आ० ) आज्य कहते हैं घृत स्निग्धपदार्थ और विज्ञान को जो उसके दान से रक्षा करने वाले हैं उनको आज्यपा कहते हैं । ( सु० ) मनुष्य-शरीर को प्राप्त होकर ईश्वर और सत्यविद्या के उपदेश का जिनका श्रेष्ठ समय और सदा उपदेश में ही वर्तमान हैं उन को सुकालिन कहते हैं । ( य० ) जो पक्षपात को छोड़ के सदा सत्य व्यवस्था न्याय ही करने में रहते हैं उनको यमराज कहते हैं ॥

**मातृपितामहप्रपितामहाः । मातृपिताम-  
हप्रपितामह्यः सगोत्राः सम्बन्धिनः ॥**

॥ भाष्यम् ॥

( पि० ) ये सुष्ठुतया श्रेष्ठान् विदुषो गुणान् वासयन्तस्तत्र वसन्तश्च विज्ञानाद्यनन्तधनाः स्वान् जनान् धारयन्तः पोषयन्तश्चतुर्विंशतिवर्षपर्यन्तेन ब्रह्मचर्येण विद्याभ्यासकारिणः स्वे जनकाश्च सन्ति ते पितरो वसवो विज्ञेया ईश्वरोपि । ( पिता० ) ये पक्षपातरहिता दुष्टान् रोदयन्तश्चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्यन्तेन ब्रह्मचर्यसेवनेन कृतविद्याभ्यासास्ते



रुद्राः स्वे पितामहाश्च ग्राह्यास्तथा रुद्र ईश्वरोपि । ( प्रपि० )  
 आदित्यवदुत्तमगुणप्रकाशका विद्मसोऽष्टचत्वारिंशद्वर्षेण  
 ब्रह्मचर्येण सर्वविद्यासम्पन्नाः सूर्यवद्विद्याप्रकाशाः स्वे प्रपि-  
 तामहाश्च ग्राह्यास्तथाऽऽदित्योऽविनाशीश्वरो वात्र गृह्यते  
 ( मा० ) पित्रादिसदृश्यो मात्रादयः सेव्याः । ( स० ) ये  
 स्वसमीपं प्राप्ताः पुत्रादयस्ते श्रद्धया पालनीयाः । ( आ०  
 सं० ) ये गुर्वादिसख्यन्तास्सन्ति ते हि सर्वदा सेवनीयाः ॥  
 इति पितृयज्ञविधिः समाप्तः ॥

### ॥ भाषार्थ ॥

जो वीर्य के निषेकादि कर्मों करके उत्पत्ति और पा-  
 लन कर और चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या  
 को पढ़े उसका नाम पिता और वसु है ( पिता० ) जो पिता  
 का पिता हो और चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम से  
 विद्या पढ़ के सब जगत् का उपकार करता हो उसको प्रपि-  
 तामह और आदित्य कहते हैं तथा जो पित्रादिकों के तुल्य  
 पुरुष हैं उनकी भी पित्रादिकों के तुल्य सेवा करनी चाहिये ।  
 ( मा० ) पित्रादिकों के समान विद्या स्वभाव वाली स्त्रियों  
 की भी अत्यन्त सेवा करनी चाहिये ( सगो० ) जो समीपवर्त्ती

ज्ञाति के योग्य पुरुष हैं वे भी सेवा करने के योग्य हैं ( आचार्यादि सं० ) जो पूर्ण विद्या के पढ़ाने वाले और श्वसुरादि सम्बन्धी तथा उनकी स्त्री हैं उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये ।

एतेषां विद्यमानानां सोमसदादीनां सुखार्थं प्रीत्या यत्सेवनं क्रियते तत्तर्पणम् श्रद्धया यत्सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धम् ॥

ये सत्यविज्ञानदानेन जनान् पान्ति रक्षन्ति ते पितरो विज्ञेयाः । अत्र प्रमाणानि—ये नः पूर्वे पितरः सोम्यास इत्यादीनि यजुर्वेदस्यैकोनविंशतितमोऽध्याये सप्तसु सोमसदादिषु पितृषु द्रष्टव्यानि । तथा ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । इत्यादीनि यमराजेषु । पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । इत्यादीनि पितृपितामहप्रपितामहादिषु एवं नमो व पितरो रसायेत्यादीनि पितृणां सत्कारे च । इति ऋग्यजुरादिवचनानि सन्तीति बोध्यम् । अन्यच्च—वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् । प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ॥ १ ॥ म० अ० ३ । श्लो० २८४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

जो सोमसदादि पितर विद्यमान अर्थात् जीवते हों उन-



का प्रीति से सेवनादि से तृप्त करना तर्पण और श्रद्धा से अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सेवन करना है सो श्राद्ध कहाता है जो सत्य विज्ञानदान से जनों को पालन करते हैं वे पितर हैं। इस विषय में प्रमाण—ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः इत्यादि मन्त्र सोमसदादि सातों पितरों में प्रमाण हैं। समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । इत्यादि मन्त्र यमराजों। पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । इत्यादि मन्त्र पितृ पितामह प्रपितामहादिकों तथा नमो वः पितरो रसायेत्यादि मन्त्र पितरों के सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं। ये ऋग्यजुर्वेद आदि के वचन हैं और मनुजी ने भी कहा है कि पितरों को वसु, पितामहों को रुद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहते हैं यह सनातन श्रुति है ॥ मनु० अ० ३। श्लो० २८४ ॥ इति पितृयज्ञविधिः समाप्तः ॥

॥ अथ बलिवैश्वदेवविधिलिख्यते ॥

यदन्नं पक्वमक्षारलवणं भोजनार्थं भवेत्तेनैव बलिवैश्वदेवकर्म कार्यम् । वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहोऽग्नौ विधिपूर्वकम् ॥ आभ्यः कुर्यादेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्त्रहम् ॥ मनु० अ० ३। श्लो० ८४ ॥

॥ अथ बलिवैश्वदेवकर्मणि प्रमाणम् ॥

अहरहर्वलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव ति-  
ष्ठते घ्रासमग्ने ॥ रायस्पोषेण समिषा मदन्तो  
मा ते अग्ने प्रतिवेशारिषाम ॥ १ ॥ अथर्व०  
का० १६ । अनु० ७ । मं० ७ ॥ पुनन्तु  
मा देव जनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु  
विश्वा भतानि जातवेदः पुनीहिमा ॥ २ ॥  
य० अ० १६ । मं० ३६ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(पुनन्तु०) अस्यार्थो देवप्रकरणे उक्तः ॥ (अहरहर्व-  
लि०) हे अग्ने परमेश्वर ! ये भवदाज्ञया बलिवैश्वदेवं नित्यं  
कुर्वन्तो मनुष्याः (रायस्पोषेण समिषा) चक्रवर्तिराज्यल-  
क्ष्म्या घृतदुग्धादिपुष्टिकारकपदार्थप्राप्त्या च सम्यक् शुद्धे-  
च्छया (मदन्तः) नित्यानन्दप्राप्ताः सन्तः मातुः पितुरा-  
चार्यादीनां चोत्तमपदार्थैः प्रीतिपूर्विकां सेवां नित्यं कुर्युः



( अश्वायेव तिष्ठते घासं० ) यथाऽश्वस्य सन्मुखे तज्जलं तृणवीरुधादि वा तत्पानार्थं जलादिपुष्कलं स्थाप्यते तथा सर्वेषां सेवनाय बहून्पुत्तमानि वस्तूनि दद्युर्यतस्ते प्रसन्ना भवेयुः ( माते अग्ने प्रतिवेशारिषाम् ) हे परमगुरो अग्ने परमेश्वर ! भवदाज्ञातो ये विरुद्धव्यवहारास्तेषु वयं कदाचिन्न प्रविशेम । अन्यायेन कदाचित्प्राणिनः पीडां न दद्याम । किन्तु सर्वान् स्वमित्राणीव स्वयं सर्वेषां मित्रमिवोति ज्ञात्वा परस्परमुपकारं कुर्यामेतीश्वराङ्गास्ति ॥

॥ भाषार्थ ॥

( पुनन्तु० ) इसका अर्थ देवतर्पण विषय में कर दिया है ( अहरहर्वलि ) हे अग्ने परमेश्वर ! आपकी आज्ञा से नित्य-प्रति बलिवैश्वदेव कर्म करते हुए हम लोग ( रायस्पोषेण समिषा ) चक्रवर्तिराज्यलक्ष्मी घृतदुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और सम्यक् शुद्ध इच्छा से ( मदंतः ) नित्य आनन्द में रहें तथा माता पिता आचार्य आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीतिपूर्वक सेवा करते रहें ( अश्वायेव तिष्ठते घासं ) जैसे घोड़े के सामने बहुतसे खाने वा पीने के पदार्थ धर दिये जाते हैं वैसे सब की सेवा के लिये बहुत से उत्तम २ पदार्थ

( ७० )

पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

देवें जिनसे वे प्रसन्न होके हम पर नित्य प्रसन्न रहें, ( मा ते  
अग्ने प्रतिवेशारिषाम ) हे परमशुभ्र अग्नि परमेश्वर ! आप  
और आप की आज्ञा से विरुद्ध व्यवहारों में हम लोग कभी  
प्रवेश न करें और अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँ-  
चावें किन्तु सब को अपना मित्र और अपने को सब का  
मित्र समझ के परस्पर उपकार करते रहें ॥

अथ होममन्त्राः ॥

ओमग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥  
ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विश्वेभ्यो  
देवेभ्यः स्वाहा ॥ ओं धन्वतरये स्वाहा ॥ ओं  
कुह्वे स्वाहा ॥ ओमनुमत्यै स्वाहा ॥ ओं प्र-  
जापतये स्वाहा ॥ ओं सह व्यावापृथिवीभ्यां  
स्वाहा ॥ ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥

॥ भाष्यम् ॥

( ओम० ) अग्न्यर्थ उक्तः ( ओं सो० ) सर्वानन्दप्रदो



यः सर्वजगदुत्पादक ईश्वरः सोऽत्र ग्राह्यः ( ओं वि० ) विश्वेदेवा विश्वप्रकाशका ईश्वरगुणाः सर्वे विद्वांसो वा ( ओं धन्वं० ) सर्वरोगनाशक ईश्वरोऽत्र गृह्यते । ( ओं कु० ) दर्शेष्ट्यर्थोऽयमारम्भः । अमावास्येष्टिप्रतिपादितायै चितिशक्तये वा ( ओम० ) पौर्णमासेष्ट्यर्थोऽयमारम्भः । विद्यापठनानन्तर्मतिर्मननं ज्ञानं यस्याश्चितिशक्तेः सा चितिरनुमतिर्वा ( ओं प्र० ) सर्वजगतः स्वामी रक्षक ईश्वरः ( ओं सह० ) ईश्वरेण प्रकृष्टगुणैः सहोत्पादितयोः पुष्टिकरणाय, ( ओं स्विष्ट० ) यः सुष्टुशोभनमिष्टं सुखं करोति स चेश्वरः । एतैर्मन्त्रैर्होमं कृत्वाऽथ बलिप्रदानं कुर्यात् ॥

॥ भाषार्थ ॥

( ओम० ) अग्नि शब्दार्थ कह आये हैं ( ओं सो० ) जो सब पदार्थों को उत्पन्न और पुष्ट करने से सुख देनेद्वारा है उसको सोम कहते हैं ( ओम० ) जो प्राण सब प्राणियों के जीवन का हेतु और अपान अर्थात् दुःख के नाश का हेतु है इन दोनों को अग्नीषोम कहते हैं । ( ओं वि० ) यहां संसार को प्रकाश करनेवाले ईश्वर के गुण अथवा विद्वान् लोगों का विश्वेदेव शब्द

( ७२ )

## पञ्चमहायज्ञविधिः ॥

सै ग्रहण होता है ( ओं ध० ) जो जन्ममरणादि रोगों का नाश करनेहारा परमात्मा वह धन्वन्तरि कहाता है ( ओं कु० ) जो अमावास्येष्टि का करना है ( ओं म० ) जो पौर्णमास्येष्टि वा सर्वशास्त्र प्रतिपादित परमेश्वर की चिति शक्ति है यद्वां उसका ग्रहण है । ( ओं प्र० ) जो सब जगत् का स्वामी जगदीश्वर है वह प्रजापति कहाता है ( ओं स० ) यह प्रयोग पृथिवी का राज्य और सत्यविद्या से प्रकाश के लिये है ( ओं वि० ) जो इष्ट सुख करनेहारा परमेश्वर है बह्मी स्वष्टकृत कहाता है । ये दश अर्थ दश मन्त्रों के हैं । अब बलिदान के मन्त्रों को लिखते हैं ॥

ओं सानुगायेन्द्राय नमः । ओं सानु-  
गाय यमाय नमः । ओं सानुगाय वरुणाय  
नमः । ओं सानुगाय सोमाय नमः । ओं  
मरुद्भ्यो नमः । ओमद्भ्यो नमः । ओं वन-  
स्पतिभ्यो नमः । ओं श्रियै नमः । ओं भद्र-



काल्यै नमः । ओं ब्रह्मपतये नमः । ओं वा-  
स्तुपतये नमः । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।  
ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ओं नक्तं-  
चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः । ओं सर्वात्मभूतये  
नमः । ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः ॥

॥ भाष्यम् ॥

( ओं सा० ) एतत्प्रवृत्ते शब्दे चेत्यनेन सत्क्रियापुर-  
स्सरविचारेण मनुष्याणां यथार्थं विज्ञानं भवतीति वेद्यम् ।  
नित्यैर्गुणैस्सहवर्त्तमानः परमैश्वर्यवान्नीश्वरोऽत्रेन्द्रशब्देन  
गृह्यते । ( ओं सानु० ) पक्षपातरहितो न्यायकारित्वादिगुण-  
युक्तः परमात्मात्रयमशब्दार्थेन वेद्यः । ( ओं सा० ) विद्या-  
द्युत्तमगुणविशिष्टः सर्वोत्तमः परमेश्वरोऽत्र वरुणशब्देन ग्र-  
हीतव्यः ) ओं सानुगाय सो० ) अस्यार्थ उक्तः । ( ओं म० )  
य ईश्वराधारेण सकलं विश्वं धारयन्ति चेष्टयन्त्यर्थेन गृ-  
ह्यन्ते ते अत्र मरुतो गृह्यन्ते ( ओम० ) आस्यार्थः शन्नोदेवी-

रित्यत्रोक्तः । ( ओं व० ) वनानां लोकानां पतय ईश्वरगुणाः  
 परमेश्वरो वा बहुवचनमत्रादरार्थम् । यद्वोत्तमगुणयोगेने-  
 श्वरेणोत्पादितेभ्यो महावृत्तेभ्यश्चेति बोध्यम् । ( ओं श्रि० )  
 श्रीयते सेव्यते सर्वैर्जनैस्सः श्रीरीश्वरस्सर्वसुखशोभावत्वाद्  
 गृह्यते । यद्वा तेनोत्पादिता विश्वशोभा च । ( ओं भ० ) भद्रं  
 कल्याणं सुखं कालयितुं शीलमस्याः सा भद्रकालीश्वर-  
 शक्तिः । ( ओं ब्र० ) ब्रह्मणः सर्वशास्त्रविद्यायुक्तस्य वेदस्य  
 ब्रह्माण्डस्य वा पतिरीश्वरः । ( ओं वा० ) वसन्ति सर्वाणि  
 भूतानि यस्मिंस्तद्वास्त्वाकाशं तत्पतिरीश्वरः । ( ओं वि० )  
 अस्यार्थ उक्तः । ( ओं दि० ) ( ओं नक्तं० ) ईश्वरकृपयैवं  
 भवेद् दिवसे यानि भूतानि विचरन्ति । रात्रौ च तान्य-  
 स्मासु विद्वन्मा कुर्वन्तु तैः सहास्माकमविरोधोऽस्तु । एत-  
 दर्थोऽयमारम्भः । ( ओं स० ) सर्वेषां जीवात्मनां भूतिर्भवनं  
 सत्तेश्वरो नान्यः ( ओं पि० ) अस्यार्थः पितृतर्पणे प्रोक्तः ।  
 नम इत्यस्य निरभिमानद्योतनार्थः । परस्योत्कृष्टतया मान्य-  
 द्वापनार्थश्चारम्भः ॥

॥ भाषार्थ ॥

( ओं सा० ) जो सर्वैश्वर्ययुक्त परमेश्वर और जो हल



के गुण हैं वे सानुग इन्द्र शब्द से ग्रहण होते हैं ( ओं सा० ) जो सत्य न्याय करनेवाला ईश्वर और उसकी सृष्टि में सत्य न्याय के करने वाले सभासद् हैं वे 'सानुगाय' शब्दार्थ से ग्रहण होते हैं ( ओं सा० ) जो सब से उत्तम परमात्मा और उस के धार्मिक भक्त हैं वे सानुग वरुण शब्दार्थ से जानने चाहिये ( ओं सा० ) पुण्यात्माओं को आनन्दित करनेवाला और पुण्यात्मा लोग हैं वे सानुग सोम शब्द से ग्रहण किये हैं ( ओं मरु० ) जो प्राण अर्थात् जिनके रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है उनको मरुत् कहते हैं इनकी रक्षा करनी अवश्य चाहिये । ( ओमद्भ्या० ) इसका अर्थ शन्नोदेवी इस मन्त्र के अर्थ में लिखा है ( ओं व० ) जिनसे वर्षा अधिक होती और जिनके फलादि से जगत् का उपकार होता है उनकी भी रक्षा करनी योग्य है । ( ओं श्रि० ) जो सब के सेवा करने योग्य परमात्मा है उसकी सेवासे राज्यश्री की प्राप्ति के लिये सदा उद्योग करना चाहिये । ( ओं भ० ) जो कल्याण करनेवाली परमात्मा की शक्ति अर्थात् सामर्थ्य है उसका सदा आश्रय करना चाहिये ( ओं ब्र० ) जो वेद का स्वामी ईश्वर है उसकी प्रार्थना और उद्योग विद्या प्रचार के

लिये अवश्य करना चाहिये, ( ओं वा० ) जो वास्तुपति गृह-  
सम्बन्धी पदार्थों का पालन करनेहारा मनुष्य अथवा ईश्वर है  
इनका सहाय सर्वत्र होना चाहिये ( ओं वि० ) इसका अर्थ  
कह दिया है ( ओं दि० ) जो दिन में विचरनेवाले प्राणियों  
से उपकार लेना और उनको सुख देना है सो मनुष्यजाति  
का ही काम है । ( ओं नक्तं० ) जो रात्रि में विचरनेवाले प्राणी  
हैं उनसे भी उपकार लेना और जो उनको सुख देना है  
इसलिये यह प्रयोग है ( ओं सर्वात्म० ) सब में व्याप्त परमेश्वर  
की सत्ता को सदा ध्यान में रखना चाहिये । ( ओं पि० ) माता,  
पिता, आचार्य, अतिथि, पुत्र, भृत्यादिकों को भोजन करा-  
के पश्चात् गृहस्थ को भोजनादि करना चाहिये । स्वाहा शब्द  
का अर्थ पूर्व कर दिया है । और नमः शब्द का अर्थ यह है कि  
आप अधिमान रहित होके दूसरे का मान्य करना है । इसके  
पीछे के भागों को लिखते हैं ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरो-  
गिणाम् । वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्व-  
पेद्भुवि ॥



अनेन षड् भागान् भूमौ दद्यात् । एवं सर्वप्राणिभ्यो भा-  
गान् विभज्य दत्त्वा च तेषां प्रसन्नतां संपादयेत् ॥ इति बलि-  
वैश्वदेवविधिः समाप्तः ॥

॥ भाषार्थ ॥

कुत्तों कङ्गाळों कुष्टी आदि रोगियों काक आदि पक्षियों  
और चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग अलग  
बांट के दे देना और उनकी प्रसन्नता सदा करना । यह वेद  
और मनुस्मृति की रीति से बलिवैश्वदेव की विधि लिखी ॥

॥ अथ पञ्चमोऽतिथियज्ञः प्रोच्यते ॥

यत्रातिथीनां सेवनं यथावत् क्रियते तत्रैव कल्याणं भ-  
वति । ये पूर्णविद्यावन्तः परोपकारिणो जितेन्द्रिया धार्मिकाः  
सत्यवादिनश्छलादिदोषरहिता नित्यभ्रमणकारिणो मनु-  
ष्यास्सन्ति तानतिथीन् कथयन्ति । अत्रानेके प्रमाणभूता वै-  
दिकीयमन्त्रास्सन्ति । परन्त्वत्र संक्षेपतो द्वावेव लिखामः ॥

तद्यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणोऽतिथिर्गृहाना-  
गच्छेत् ॥ १ ॥ स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद्ब्रा-

त्य कावात्सीव्रात्योदकं व्रात्यं तर्पयन्तु  
 व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते  
 वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥  
 अथर्व० कां० १५ । व० ११ । अ० २ ॥  
 मं० १ । २ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(तद्य०) यस्य गृहे पूर्वोक्तविशेषणयुक्तो विद्वान् (व्रात्यः)  
 महोत्तमगुणविशिष्टः सेवनीयातिथिरथाद्यस्यागमनागम-  
 नयोरनियततिथिर्न यस्य काचिन्नियततिथिर्भवति किन्तु  
 स्वेच्छयाऽकस्मादागच्छेद्गच्छेच्च स यदा गृहस्थानां गृहेषु  
 प्राप्नुयात् ॥१॥ (स्वयमेन म०) तदा गृहस्थोऽत्यन्तप्रेम्णो-  
 त्थाय नमस्कृत्य च तं महोत्तमासने निषादयेत् । तदनन्तरं  
 पृच्छेद् भवतां जलादेरन्यस्य वा वस्तुन इच्छास्ति चेत्तद्  
 ब्रूहि । सेवां कृत्वा तत्प्रसन्नतां सम्पाद्य स्वस्थचित्तस्सन्नेवं  
 पृच्छेत् (व्रात्य ववावात्सीः) हे व्रात्य पुरुषोत्तम ! त्वमितः



पूर्वकं अवात्सीः कुत्र निवासं कृतवान् ( व्रात्योदकं ) हे अतिथे ! जलमेतद् गृहाण ( व्रात्य तर्पयन्तु ) भवान् स्वकीयसत्योपदेशेनास्मांश्च तर्पयतु प्रीणयतु तथा भवत्सत्योपदेशेन तत्सर्वाणि मम मित्राणि भवन्तं ( तर्पयित्वा ) विज्ञानवन्तो भवन्तु । ( व्रात्य यथा० ) हे विद्वन् यथा भवतः प्रसन्नता स्यात्तथा वयं कुर्याम । यद्वस्तु भवत्प्रियमस्ति तस्याज्ञां कुरु ( व्रात्य यथा ते० ) हे अतिथे ! यथेच्छतु भवान् तदनुकूलानस्मान् भवत्सेवाकरणे निश्चिनोतु ( व्रात्य यथा ते० ) यथा भवदिच्छापूर्तिस्स्यात् तथा भवत्सेवां वयं कुर्याम । यतो भवान् वयं च परस्परं सेवासत्सङ्गपूर्विकया विद्यावृद्ध्या सदानन्दे तिष्ठेम ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब जो पांचवां अतिथियज्ञ कहाता है उसको लिखते हैं जिसमें अतिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है । जो पूर्ण विद्वान् परोपकारी जितेन्द्रिय धार्मिक सत्यवादी छल कपट रहित नित्य भ्रमण करने वाले मनुष्य होते हैं उनको अतिथि कहते हैं । इसमें अनेक वैदिक मन्त्र प्रमाण हैं । परन्तु यहां संक्षेप के लिये दो ही मन्त्र लिखते हैं ( तद्यस्यैवं विद्वान्० )

जिसके घर में पूर्वोक्त गुणयुक्त विद्वान् ( ब्राह्म्यः ) उत्तम गुण-  
विशिष्ट सेवा करने के योग्य अतिथि आवे जिसकी आने जाने  
की कोई भी निश्चित तिथि नहीं हो अकस्मात् आवे और  
जावे जब ऐसा मनुष्य गृहस्थों के घर में प्राप्त हो ॥ १ ॥  
( स्वयमेन म० ) तब उस को गृहस्थ अत्यन्त प्रेम से उठकर  
नमस्कार करके उत्तम आसन पर बैठा के पश्चात् पूछे कि आप  
को कुछ जल वा किसी अन्य वस्तु की इच्छा हो सो कहिये,  
इस प्रकार उसको प्रसन्न कर और स्वयं स्वस्थचित्त होके  
उससे पूछे कि ( ब्राह्म्य क्वाचात्सीः ) हे ब्राह्म्य उत्तम पुरुष  
आपने यहाँ आने के पूर्व कहां वास किया था ( ब्राह्म्योदकं )  
हे अतिथि ! यह जल लीजिये ( ब्राह्म्य तर्पयन्तु ) और हम लोग  
अपने सत्य प्रेम से आप को तृप्त करते हैं और सब हमारे इष्ट  
मित्र लोग आप के उपदेश से विज्ञानयुक्त होके सदा प्रसन्न  
हों ( ब्राह्म्य यथा० ) हे विद्वान् ! ब्राह्म्य जिस प्रकार से आपकी  
प्रसन्नता हो वैसा ही हम लोग काम करें और जो पदार्थ आप  
को प्रिय हो उसकी आज्ञा कीजिये ( ब्राह्म्य यथा० ) जिस  
प्रकार से आप की कामना पूर्ण हो वैसी आप की सेवा हम  
लोग करें । जिससे आप और हम लोग परस्पर सेवा और स-  
त्संगपूर्वक विद्या वृद्धि से सदा आनन्द में रहें ॥ २ ॥

॥ इति संक्षेपतोऽतिथियज्ञः ॥

॥ इति पञ्चमहायज्ञविधिः समाप्तः ॥





\* ओ३म् \*

## आर्यसमाज के नियम ॥

- ( १ ) सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्यां से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है ॥
- ( २ ) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है ॥
- ( ३ ) वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है ॥
- ( ४ ) सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥
- ( ५ ) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ॥
- ( ६ ) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥
- ( ७ ) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये ॥
- ( ८ ) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥
- ( ९ ) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से मन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥
- ( १० ) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥









